नाटककार श्रीहर्ष

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान् बुद्ध की माँ—रानी माया—के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी, जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवत: सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

नाटककार श्रीहर्ष

लेखक

कमलापति मिश्र

साहित्य अकादेमी

Natakkar Sriharsh : A monograph in Hindi by Kamalapati Mishra on the Sanskrit dramatist. Sahitya Akademi, New Delhi.,

प्रथम संस्करण : 1985
प्रथम पुनर्मुद्रण :1992

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली-110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग,नयी दिल्ली-110 001
क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23ए /44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता-700 053.
गुन्ना बिल्डिंग, द्वितीय तल, न० 304-305, अन्नासलई तेनामपेट, मद्रास-600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-400 014
ए.डी.ए, रंगामंदिरा, 109, जे. सी. रोड, बैंगलोर-560 002

मुद्रकः
प्रिंटको, नयी दिल्ली

विषय-सूची

प्रस्तावना	7
श्रीहर्ष का जीवन-वृत्त	9
श्रीहर्ष का कृतित्व	16
प्रियदर्शिका : संक्षिप्त कथा और समीक्षा	21
नागानन्द : संक्षिप्त कथा और उसके मूल स्रोत	28
नागानन्द नाटक की समीक्षा	34
रत्नावली : संक्षिप्त कथा और मूल स्रोत	43
नाटिका के रूप में रत्नावली	51
प्रियदर्शिका और रत्नावली में साम्य	53
रत्नावली : सामाजिक पृष्ठभूमि और नाट्यशास्त्रीय तत्त्व	55
श्रीहर्ष की शैली	60
रस-परिपाक	66
रत्नावली के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण	69
श्रीहर्ष का समग्र व्यक्तित्व	73
सन्दर्भ-ग्रन्थ	79

प्रस्तावना

नाटककार श्रीहर्ष अपने उदात्त गुणों के कारण संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य नाटककारों में हैं। उसका कवित्व, उसकी प्रतिभा, उसकी कमनीय कल्पनाएँ अनूठी हैं। संस्कृत के महाकवि और काव्यशास्त्री उसके गुणों पर मन्त्रमुग्ध हैं। महाकवि बाण ने उसे कवि, विद्वान्, शास्त्रज्ञ, काव्यामृतवर्षी, सरस्वती का मूर्तरूप बताया है: विग्रहिणीमिव मुखवासिनीं 'सरस्वतीं' दधानम्। (हर्षचरित, पृष्ठ 74) प्रज्ञाया: शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः,...न पर्याप्तो विषयः। (हर्षचरित, पृष्ठ 78)

सोड्ढल (ग्यारहवीं शताब्दी ई०) 'उदयसुन्दरी कथा' में श्रीहर्ष को राजा, कवीन्द्र, गीर्हर्ष (वाणी का आनन्द) और बाण का आश्रयदाता बताया है। (श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु, काव्यमीमांसा, भूमिका, पृष्ठ 10)

जयदेव (11वीं शती ई०) ने भी 'प्रसन्नराघव' में भास, कालिदास, बाण आदि के साथ हर्ष को कवि और कविता का हर्ष कहा है 'हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः' (प्रसन्नराघव, 1-22)। प्रियदर्शिका (1-3) और 'रत्नावली' नाटिका (1-5) में भी श्रीहर्ष को निपुण कवि कहा गया है। (श्रीहर्षो निपुणः कविः)

श्रीहर्ष एक कुशल नाटककार हैं। उनकी नाटिकाओं में वस्तु-विन्यास अत्यन्त प्रभावोत्पादक और योजनाबद्ध है। उनकी नाटिकाओं में गतिशीलता है और कार्यव्यापार में धाराप्रवाह। कल्पनाओं में मनोरमता और उत्कर्ष है। प्रियदर्शिका में कवि का कल्पना-पक्ष उतना नहीं निखरा है, जितना 'रत्नावली' में। 'रत्नावली' कवि की प्रौढ़ कल्पना का आदर्श है। 'प्रियदर्शिका' में 'गर्भनाटक' मौलिक और 'रत्नावली' में ऐन्द्रजालिक का दृश्य मनोज्ञ कल्पना है।

तीनों नाटकों में शास्त्रीय दृष्टि से 'रत्नावली' अनुपम रत्न है। इसमें सभी नाट्य शास्त्रीय तत्त्व अनायास प्राप्त होते हैं। इसमें अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं, सन्धियों और सन्ध्यंगों का इतना विशद निरूपण है कि प्रत्येक नाटकीय तत्त्व का उदाहरण इसमें प्राप्य है। अतएव 'दशरूपककार' धनंजय और 'साहित्यदर्पणकार' विश्वनाथ इसके गुणों पर मन्त्रमुग्ध हैं। दोनों ने नाटकीय तत्त्वों के उदाहरण के रूप में इसके पद्य प्रस्तुत किये हैं। इससे श्रीहर्ष की नाट्य-कुशलता का ज्ञान होता है।

श्रीहर्ष वैदर्भी रीति के कवि हैं। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुणों का समन्वय है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वह सरल से सरल और कठिन से कठिन पद्यों की रचना में समान रूप से समर्थ हैं। भावों के अनुसार उनकी भाषा में उतार-चढ़ाव है। सामान्य वर्णनों में सरल और मधुर भाषा का प्रयोग है, परन्तु वीर, बीभत्स और रौद्र रसों के वर्णन में ओजपूर्ण शब्दावली तथा समस्त पदावली वाली गौड़ी शक्ति का गुम्फन हुआ है। भाषा प्रौढ़, परिष्कृत एवं प्रवाहपूर्ण है। कवि में प्रौढ़ कवित्व है और उदात्त कल्पना-शक्ति। काव्य में संगीतात्मकता का भी समन्वय है। दोनों नाटिकाओं में श्रृंगार रस प्रधान है और 'नागानन्द' में शान्त रस। अलंकारों का प्रयोग प्रायः अनायास ही सहज ढंग से विकसित है। श्रम-साध्य अलंकारों का अभाव है। स्वाभाविक रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। कवि के प्रकृति-वर्णण विशेष रूप से मनोरम हैं।

कवि संगीत, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, दशन, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि का विशेषज्ञ है। अतः उसके नाटकों में यथास्थान शास्त्रीय पाण्डित्य का मनोरम समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

श्रीहर्ष के नाटक रंगमंच की दृष्टि से अभिनेय हैं। अन्तःपुर के प्रणय-व्यापार के विशद वर्णन में वह अनुपम है। प्रणय-नाटिका के प्रणयन में वह अद्वितीय है। नाटकों की अभिनेयता की दृष्टि से भी वह मूर्धन्य नाटककारों में है।

श्रीहर्ष ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में 'अपूर्व-वस्तुरचनालंकृत' शब्द का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि उसने प्राचीन कथाओं को भी नवीन रूप देकर प्रस्तुत किया है। नाटकोचित परिवर्तन और नवरूप-संभार नाटककार की मौलिकता का परिचायक है।

सभी नाटककारों ने लघु-छन्दों का प्रयोग किया है। यत्र-तत्र दीर्घ या बड़े छन्द भी दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु श्रीहर्ष ही ऐसा कुशल कवि हैं, जिसने अपने नाटकों में शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा जैसे बड़े छन्दों का धारा-प्रवाह प्रयोग किया है। उसने अपने नाटकों में 73 शार्दूल विक्रीडित और 36 स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग किया है। इससे उसकी काव्यशास्त्रीय प्रौढ़ता का ज्ञान होता है।

उपर्युक्त वर्णन के आधारपर यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष एक अत्यन्त सफल नाटककार, कवि और शास्त्रज्ञ हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीहर्ष की नाट्य-कुशलता, प्रौढ़ कल्पना-शक्ति, विविध-शास्त्रज्ञता और कवित्व के परिपाक का विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

—कमलापति मिश्र

श्रीहर्ष का जीवन-वृत्त

नाटककार श्रीहर्ष एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। उन्होंने 606 ई० से 648 ई० तक थानेश्वर पर शासन किया। हर्ष की गणना भारतीय इतिहास के महत्तम शासकों में की जाती है। हर्ष के जीवन-वृत्त का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि तत्कालीन राजनीति पर भी दृष्टिपात किया जाय।

महान् साम्राज्यवादी गुप्त शासकों ने भारतवर्ष की राजनीतिक एकता को दृढ़ स्वरूप प्रदान किया था। तत्कालीन छोटे-छोटे राज्यों का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त करके उन्होंने एक सुविस्तृत साम्राज्य की आधार-शिला रखी थी। लेकिन इस वंश के बाद के शासक इतने अधिक प्रतापी नहीं थे, जो इसकी विशाल सीमाओं को अक्षुण्ण रख सकते। परिणामस्वरूप इस वंश का पराभव अवश्यंभावी हो गया। यह गौरवशाली साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उत्तरभारत से केन्द्रीय सत्ता का लोप हो जाने के कारण यह देश राजनीतिक महत्त्वाकांक्षियों एवं साहसिक योद्धाओं का उन्मुक्त चरागाह बन गया। पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वंद्विता से परिपूर्ण अनिश्चितता के दौर में भारतीय राजनीति को सम्राट् हर्षवर्धन के शासन-काल में एक नया आयाम प्राप्त हुआ। यह युग विविध क्षेत्रों में अपनी बहु-मुखी उपलब्धियों के कारण ही भारतीय इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय बन चुका है।

गुप्तों के पतन-काल से छठी शताब्दी ई० के प्रारम्भ में स्थाणीश्वर या थानेश्वर (अम्बाला जिले का आधुनिक थानेसर) में हर्ष के पूर्वजों का राज्य स्थापित हुआ। बाणभट्ट के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि पुष्यभूति इस वंश का संस्थापक था। इसी आधार पर इस वंश को पुष्यभूति-वंश की संज्ञा प्रदान की जाती है। पुष्यभूति क्षत्रियवंश का था, जिसने इस क्षेत्र के मूल नागवंशीय शासक श्रीकण्ठ को अपने पराक्रम से पराभूत करके अपना आधिपत्य स्थापित किया था। इस वंश के अन्य शासकों का उल्लेख न करते हुए बाणभट्ट ने अपना विवरण प्रभाकरवर्धन के राज्यकाल से आरम्भ किया है। यही कारण है कि इस वंश की उत्पत्ति का प्रश्न तथा स्पष्ट वंशावली संदिग्ध है। मुद्राओं में अवश्य ही इस वंश के अन्य आरम्भिक

शासकों का नामोल्लेख प्राप्त हो जाता है। तदनुसार पुष्यभूति के पश्चात् महाराज नरवर्धन, महाराज राज्यवर्धन प्रथम, महाराज आदित्यवर्धन तथा परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन आरम्भिक शासक के रूप में प्रमाणित होते हैं, जिनका प्रभाव उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया था। इन सबमें प्रभाकरवर्धन ही सर्वाधिक योग्य एवं प्रतापी और महत्त्वाकांक्षी था। हर्ष-चरित के विवरण से यह स्पष्ट है कि अपने भुजबल से अनेक राजाओं को युद्ध में परास्त करके प्रभाकरवर्धन ने ख्याति अर्जित की थी। बाणभट्ट ने (हर्ष-चरितम् में) इसकी सैन्य उपलब्धियों का आलंकारिक भाषा में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। उसे देखकर यह प्रमाणित होता है कि पुष्यभूति-वंश की स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता इसी काल में स्थापित हुई।

प्रभाकरवर्धन का विवाह यशोमति देवी से हुआ था, जिससे तीन सन्तानें उत्पन्न हुई थीं—राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री। राज्यवर्धन हर्षवर्धन से चार वर्ष तथा राज्यश्री से छः वर्ष बड़ा था। हर्ष-चरित में प्राप्त विवरण से हर्ष का जन्म 590 ई० सिद्ध होता है।

प्रभाकरवर्धन वर्धन साम्राज्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण शासक था। प्रभाकरवर्धन के राज्यकाल का महत्त्व इसलिए अधिक है कि इसने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह कन्नौज (कान्यकुब्ज) के तत्कालीन मौखरी-राजवंश के शासक महाराज गृहवर्मन् से किया था। इस वैवाहिक सम्बन्ध का उस समय की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था। गुप्तों के पतन-काल में ही मौखरियों का उत्कर्ष हुआ था, जिन्होंने कन्नौज में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की थी। इस वंश के शासक भी अपने क्षेत्र में उत्तरोत्तर दृढ़ हुए थे। मगध के तत्कालीन गुप्त शासकों से जो अब निर्बल हो चले थे, इनका सम्बन्ध प्रारम्भ में मैत्रीपूर्ण था और इनमें वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हुआ था, लेकिन यह मित्रता चिरस्थायी नहीं रह सकी थी। क्योंकि इन्हीं की महत्त्वाकांक्षाओं के कारण गुप्त शासकों को अपने मूल क्षेत्र मगध से हाथ धोना पड़ा और मालवा में बसना पड़ा। इस प्रकार मालवा के ये शासक मौखरियों के पर्याप्त विरुद्ध थे। ऐसे राजवंश से पुष्यभूतियों के वैवाहिक संबन्ध स्थापित होने को मालवा के शासक कभी आदर नहीं दे सकते थे; क्योंकि मौखरियों ने बंगाल के गौड़ शासकों को भी अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा का लक्ष्य बनाया था। इसी पृष्ठभूमि में गौड़ों से मालवा के शासकों की मित्रता हो गयी। इस प्रकार पुष्यभूतियों और मौखरियों का एक संगठन तथा मालवा के शासकों और गौड़ों का दूसरा संगठन बन चुका था, जो एक-दूसरे के विरुद्ध था और जिससे कालान्तर की राजनीति विशेष रूप से प्रभावित हुई।

स्कन्दगुप्त के काल से ही भारतवर्ष पर विदेशी हूण शासकों का निरन्तर प्रहार हो रहा था। प्रभाकरवर्धन ने अपने राज्यकाल में हूणों को अपनी सीमा में नहीं प्रविष्ट होने दिया। हर्ष-चरित से ज्ञात होता है कि जब प्रभाकरवर्धन वृद्ध हो गया

तब लगभग 604 ई० में, हूणों ने उत्तर पश्चिम दिशा से पुनः इस राज्य पर आक्रमण किया। प्रभाकरवर्धन ने अपने राज्य की रक्षा का दायित्व अपने दोनों पुत्रों, राज्यवर्धन और हर्षवर्धन को सौंप दिया; जिनकी अवस्था क्रमशः अठारह वर्ष और चौदह वर्ष थी। कहा जाता है कि हूणों का पीछा करते हुए राज्यवर्धन अपनी सीमा से काफ़ी दूर तक निकल गया। जब कि हर्षवर्धन कुछ दूर तक ही गया और मार्ग में आखेट की इच्छा से रुक गया। इसी बीच थानेश्वर से कुरंगक नामक राजदूत ने हर्षवर्धन को उसके पिता के गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने की सूचना दी। हर्षवर्धन तत्काल ही अपने राज्य में वापस आ गया। दुःखी राजकुमार जब अपने पिता के पास पहुँचा तो उसकी माँ यशोमति देवी अपने पति की चिन्ताजनक हालत पर रो रही थी। जब प्रभाकरवर्धन के बचने की समस्त आशाएँ समाप्त होती हुई दिखाई पड़ने लगीं, तब यशोमति देवी सरस्वती नदी के तट पर चिता में जलकर सती हो गयी। मरते समय प्रभाकरवर्धन ने राज्य का भार अपने कनिष्ठ पुत्र हर्ष को सौंप दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि ज्येष्ठ-पुत्र राज्यवर्धन के राज्य से बाहर रहने के कारण तथा तात्कालिक स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए प्रभाकरवर्धन राज-सिंहासन को खाली नहीं रखना चाहता था। संभवतः इसीलिए उन्होंने हर्ष का चयन किया। इसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी।

यद्यपि हर्ष को पुष्यभूति-साम्राज्य का उत्तराधिकारी मनोनीत किया गया था; तथापि उसने तुरन्त ही अपने दूतों को बड़े भाई राज्यवर्धन के पास बुलाने के लिए भेजा। हूणों को परास्त कर जब राज्यवर्धन वापस लौटा, तब उसे अपने माता-पिता के दिवंगत होने का समाचार प्राप्त हुआ, जिससे उसका मन विचलित हो गया। बौद्ध मतावलम्बी होने के कारण उसका स्वभाव आरम्भ से ही निवृत्तिपरक था। वह राज्य-शासन के प्रपंचों से दूर रहना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने संन्यास लेने की घोषणा की।

इधर हर्षवर्धन को भी राज्य-प्राप्ति का कोई लालच नहीं था। उसने भी अपने भाई के पदचिह्नों पर चलने का निश्चय कर रखा था। कहा जाता है कि जिस समय दोनों भाई एक-दूसरे से राज-सत्ता ग्रहण करने का आग्रह कर रहे थे, उसी समय सहसा शोक से विह्वल आँखों से अश्रु-धार बहाता हुआ तथा क्रन्दन करता हुआ, राज्यश्री का संवादक नामक सुपरिचित परिचारक सभा-भवन में उपस्थित हुआ। उसने बड़े दुःख के साथ राज्यवर्धन तथा हर्ष को उनके बहनोई गृहवर्मन् की हत्या हो जाने का समाचार दिया। उसने बताया कि जिस दिन मालवराज को प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ, उसी दिन उस दुष्ट ने आक्रमण कर महाराज गृहवर्मन् की हत्या कर दी और राज्यश्री को बन्दी बनाकर कन्नौज के कारागार में डाल दिया। उसने यह भी सूचित किया कि मालवराज ने थानेश्वर-राज्य को नेतृत्वविहीन कर समाप्त करने के लिए अपने आक्रमण का केन्द्र

बनाया है और वह किसी भी क्षण इस राज्य पर प्रहार कर सकता है।

अपने बहनोई के मारे जाने का समाचार सुनकर राज्यवर्धन का खून खौल उठा। मालवराज के इस कुकृत्य से पिता की मृत्यु का शोक भुलाकर राज्यवर्धन ने संन्यास लेने का विचार त्याग दिया और लगभग 605 ई० में सत्ता ग्रहण की। लेकिन क्रोध के वशीभूत होकर मालवराज को तत्काल दण्डित करने के उद्देश्य से उसने अपने ममेरे भाई एवं सेनापति भण्डि के साथ दस हज़ार चुने हुए घुड़सवारों को लेकर प्रस्थान किया। इस समय सारे राज्य का भार उसने अपने छोटे भाई हर्षवर्धन को सौंपा; यद्यपि इस अवसर पर वह भी सेना के साथ जाने को उत्सुक था। ऐसा प्रतीत होता है कि थानेश्वर और कन्नौज के बीच ही, राज्यवर्धन और मालवराज की सेनाओं की कहीं मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में बड़ी आसानी से राज्यवर्धन को विजयश्री प्राप्त हुई और मालव-नरेश मारा गया।

इधर हर्षवर्धन बड़ी ही व्यग्रता और उत्सुकता से अपने भाई की सफल वापसी की प्रतीक्षा कर रहा था। पर नियति को कुछ और ही मंजूर था। थानेश्वर राज्य पर विपत्तियों का अभी अन्त नहीं हुआ था। राज्यवर्धन गौड़ाधिपति शशांक की चाल में फँस गया। शशांक को राज्यवर्धन से भय था। अतः वह उसे समाप्त कर देना चाहता था। उसने सरलमना राज्यवर्धन को अपनी पुत्री का विवाह उससे करने की इच्छा प्रकट कर, अपने यहाँ आमंत्रित किया और धोखे से भोजन करते समय उसे मार डाला। नवयुवक राजा में वीरता तो थी; परन्तु अप्रौढ़ होने के कारण राजनीतिक दाँवपेंच को समझ पाने की अन्तर्दृष्टि उसमें विकसित नहीं हो पायी थी। चीनी यात्री श्वान् च्वांग ने उसके मंत्रियों पर इस बात का दोषारोपण किया है कि उन्होंने राज्यवर्धन को ठीक परामर्श नहीं दिया और वह उनकी ग़लती से मारा गया।

पिता श्री प्रभाकरवर्धन की मृत्यु, माता यशोमति के प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद सती हो जाने, बहनोई गृहवर्मन् के बध तथा अपनी बहन राज्यश्री के बन्दी बनाये जाने के समाचार से राज्यवर्धन के मालवनरेश के विरुद्ध प्रस्थान करने के पश्चात् हर्ष की जो दशा थी, उसका मार्मिक वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है : शोक और विपत्ति के उन दिनों में हर्षवर्धन अपना समय भी नहीं काट पाता था। अपने झुंड से छूटे हुए किसी हाथी की तरह वह खोया-खोया-सा रहता था। दुःख और विपत्ति से टूटे हुए हर्ष को अपने भाई की मृत्यु का अविश्वसनीय समाचार प्राप्त हुआ। हर्ष पर इस समाचार से क्या बीती होगी, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। उसका मन सांसारिक जीवन के प्रति वैराग्यपूर्ण हो गया। थानेश्वर के बूढ़े सेनापति सिंहनाद ने शोकविह्वल हर्ष को सान्त्वना देते हुए उसे कर्तव्यों के प्रति अभिमुख होकर उत्साहित करने की दृष्टि से कहा था :

"अपने पिता, पितामह और प्रपितामह के मार्ग का अनुसरण करो जो

त्रिभुवन में श्लाघनीय हैं ! इस विपत्ति के समय शोक छोड़कर कुल परंपरागत लक्ष्मी को इस प्रकार ग्रहण करो, जैसे सिंह कुरंग को। देव महाराज प्रभाकर-वर्धन स्वर्गधामवासी हो गये हैं और राज्यवर्धन की दुष्ट भुजंगरूपी राजा गौड़ाधिपति के दमन से मृत्यु हो गई है। इस सर्वनाश के बाद अब केवल तुम्हीं शेष रह गये हो। अब तुम्हें पृथ्वी की रक्षा का भार लेकर अपना वीर-पुरुषोचित कर्त्तव्य पूरा करना है। अतः तुम अपनी आश्रयहीन प्रजा को सांत्वना दो और उसे आश्वस्त करो। (हर्ष-चरित)"

हर्ष पर सोलह वर्ष की अल्प अवस्था में थानेश्वर राज्य के साथ-साथ उसके बहनोई के राज्य कन्नौज पर पड़नेवाली विपत्तियों के निराकरण का दायित्व आ पड़ा। यह हर्ष के लिए कड़ी परीक्षा की घड़ी थी। राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार सुनकर हर्ष का मुँह लाल हो गया और उसके काँपते हुए होंठ मानो शत्रु को चबा जाने की इच्छा करने लगे। हर्ष-चरित से ज्ञात होता है कि हर्ष ने तुरन्त प्रतिज्ञा की—'यदि मैं कुछ दिनों के अन्दर अपने धनुष की चपलता के कारण उत्तेजित सभी शत्रु-राजाओं के पैरों में बेड़ियाँ डालकर उनकी झंकार से सारी पृथ्वी को झंकृत न कर दूँ तथा गौडराज से पृथ्वी को रहित न कर दूँ तो जलती हुई अग्नि में अपने को पतंग की भाँति स्वयं झोंक दूँगा और जल मरूँगा।'—हर्ष इसी प्रतिज्ञा के साथ 606 ई० में थानेश्वर के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

जिस समय हर्ष शासक हुआ, उसके समक्ष अनेक कठिनाइयाँ थीं। एक ओर उसकी विधवा बहन का कुछ पता नहीं था, दूसरी ओर कन्नौज में गृहवर्मन् की निःसन्तान मृत्यु हो जाने के कारण उत्तराधिकार का प्रश्न जटिल था। इसके अतिरिक्त उसे उन शासकों को दण्ड देना था, जिन्होंने उसके पारिवारिक जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया था और जो उसकी स्वतंत्र सत्ता के समक्ष चुनौती बन गये थे।

हर्ष ने शत्रु-राजाओं को दण्ड देने के उद्देश्य से एक शक्तिशाली सेना के साथ थानेश्वर से प्रस्थान किया। हर्ष-चरित से ज्ञात होता है कि राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद कन्नौज पर गुप्त नामक किसी शासक का अधिकार हो गया था। राज्यश्री संभवतः इस परिस्थिति का लाभ उठाकर स्वयं कारावास से निकलकर भाग गयी थी और अपने परिजनों के साथ विन्ध्याचल के पर्वतों में प्रवेश कर गयी थी। शत्रु-दमन के लिए निकले हर्ष की भेंट भण्डि से हुई, जो राज्यवर्धन द्वारा विजित सम्पूर्ण मालव सेना लेकर लौट रहा था। भण्डि से हर्ष को ज्ञात हुआ कि उसकी बहन राज्यश्री कन्नौज के कारावास से मुक्त होकर अपने परिजनों के साथ विन्ध्याचल के वन में चली गयी है। हर्ष ने पहले अपनी बहन का पता लगाना आवश्यक समझा। विन्ध्य वनों में काफ़ी दूर जाकर उसने अपनी बहन राज्यश्री की खोज की। भाग्यवश उसकी भेंट गृहवर्मन के बाल्यकाल के मित्र दिवाकर मित्र से हो गयी,

जो बौद्ध भिक्षुक के रूप में वन में रहा करते थे। उनकी सहायता से हर्ष ने राज्यश्री की खोज की और उसका पता लगाने में सफलता प्राप्त की। जिस समय वह राज्यश्री को खोजता हुआ, उसके पास पहुँचा, वह उस समय चिता में प्रवेश करने जा रही थी। उस अवस्था में अपने भाई को देखकर वह विलाप करने लगी। हर्ष ने उसे धैर्य धारण करने और अपने को सँभालने को कहा। बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र के सामने राज्यश्री ने विनयपूर्वक काषाय वस्त्र धारण करने की अनुमति माँगी। परन्तु हर्ष और दिवाकर मित्र के समझाने पर उसने इस विचार को त्याग दिया। हर्ष ने उसकी सांत्वना के लिए कुछ दिन दिवाकर मित्र के आश्रम में ही व्यतीत किए।

कहा जाता है कि हर्ष ने कन्नौज का शासन वहाँ के मंत्रियों के आग्रह पर स्वीकार कर लिया था और उसपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। यह भी उल्लेख मिलता है कि गृहवर्मन की मृत्यु के बाद गुप्त उपाधि नामधारी किसी व्यक्ति ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। कदाचित् उसे परास्त करके हर्ष ने वहाँ के सिंहासन पर अधिकार किया था। किन्तु गृहवर्मन की मृत्यु के बाद श्रीहर्ष राज्यश्री को ही वहाँ का उत्तराधिकारी मानता था। राज्यश्री भिक्षुणी हो गयी थी अतः वह उसकी ओर से स्वयं को कन्नौज का शासक मानता था।

राज्यश्री को ढूँढ़ लेने तथा कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेने के बाद श्रीहर्ष अपने विजय-अभियान की ओर उन्मुख हुआ। दुर्भाग्य का विषय है कि हर्षवर्धन की विजयों का न विस्तृत विवरण ही प्राप्त होता है और न उनका तिथि-क्रम ही।

हर्ष ने सिंहासनारूढ़ होकर प्रतिज्ञा की कि वह पृथिवी को गौड़ों से विहीन कर देगा। अपनी इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए हर्ष ने शशांक पर आक्रमण किया। विद्वानों में इस विषय पर मतभेद है कि इस युद्ध में कौन विजयी हुआ। शे-फिया-फेंग-चे नामक चीनी साक्ष्य से ज्ञात होता है कि हर्ष ने असम के भास्करवर्मन् के साथ मिलकर बौद्ध-धर्म-विरोधी शशांक, उसकी सेना और उसके अनुयायियों को नष्ट कर दिया। इससे स्पष्ट होता है कि हर्ष और भास्करवर्मन् दोनों ने मिलकर शशांक को परास्त किया। शशांक पर हर्षवर्धन की विजय की पुष्टि 'आर्यमंजुश्री-मूलकल्प' से भी होती है, जहाँ यह उल्लेख मिलता है कि हर्ष गद्दी पर बैठने के कई वर्षों बाद ही शशांक को पराजित करने और अपने भाई राज्यवर्धन की हत्या का बदला लेने में सफल हुआ।

बाणभट्ट ने लिखा है कि हर्ष ने सिन्धु देश के राजा को हराकर उसकी राज्य-लक्ष्मी को हड़प लिया। संभव है, हर्ष ने पश्चिम भारतीय विजय-अभियान में सिन्धु के राजा को परास्त कर अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए उसे विवश किया हो। बाण के एक उल्लेख के आधार पर ब्यूलर महोदय ने हर्ष की नेपाल-

विजय का उल्लेख किया है।

हर्ष उत्तरापथ का निष्कण्टक स्वामी होना चाहता था। अतः उसने वलभी राज्य पर आक्रमण किया। युद्ध में हर्ष से वलभी-नरेश ध्रुवभट्ट हार गया और उसे गुर्जर नरेश के यहाँ शरण लेनी पड़ी। हर्ष ने ध्रुवभट्ट को अपने सीमान्त में चालुक्यों के विरुद्ध एक मित्र और मध्यस्थ राजा के रूप में छोड़ दिया। ध्रुवभट्ट से अपनी मित्रता चिरस्थायी बनाये रखने के लिए उसने ध्रुवभट्ट की कन्या से विवाह कर लिया।

हर्ष के विरुद्ध चालुक्य, लाट, मालवा और गुर्जर राज्यों ने एक संघ बना लिया था। नर्मदा नदी के दक्षिण में सीमा-विस्तार के उद्देश्य से हर्ष ने चालुक्यवंशीय पुलकेशी द्वितीय के विरुद्ध आक्रमण किया। हर्ष को चारों राज्यों के संघ का सामना करना पड़ा। ऐहोल शिलालेख से ज्ञात होता है कि 'जिसके चरण कमलों पर अपरिमित समृद्धि से युक्त सामन्तों की सेना नतमस्तक होती थी, उस हर्ष का हर्ष युद्ध में मारे हुए हाथियों का बीभत्स दृश्य देखकर विगलित हो गया।' हर्ष इस युद्ध में परास्त हुआ। एक इतिहासकार का मत है कि 643 ई० में कोंकद पर आक्रमण कर पुलकेशी द्वितीय के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर उसने अपनी पुरानी हार का बदला लिया।

बाण ने हर्ष की दिग्विजयों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि तुषारगिरि और गन्ध-मादन के बीच की दूरी तो कम ही है। उत्साही के लिए तुरुष्कों के विषय केवल एक हाथ के बराबर हैं। पारसीकों का देश एक छोटा भूखण्ड है, शक स्थान केवल शशपद के समान है। प्रतीहारों के अभाव में पारियात्र देश की विजय केवल मामूली यात्रा से हो सकती है और दक्षिणापथ को शौर्य का शुल्क चुका कर पाया जा सकता है। इन देशों की पहचान करने से ज्ञात होता है कि हर्ष का साम्राज्य उत्तर पश्चिम, पश्चिम और दक्षिणापथ तक फैला हुआ था।

बाणभट्ट ने हर्ष को 'चारों समुद्रों के अधिपति, महाराजाधिराज परमेश्वर, समस्त चक्रवर्ती राजाओं में श्रेष्ठ तथा अन्य राजाओं के चूड़ामणि द्वारा चमकते हुए नखों वाला' कहा है।

हर्ष की मृत्यु 648 ई० में, बयालीस वर्ष तक एक महान् शासक के रूप में शासन करने के उपरान्त हुई।

श्रीहर्ष का कृतित्व

श्री हर्ष की तीन रचनाएँ—(1) **प्रियदर्शिका**, (2) **रत्नावली**, (3) **नागानन्द** नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों नाटिकाएँ हैं तथा नागानन्द नाटक है।

इन तीनों नाटकों का लेखक कौन है—विद्वानों में इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन काल में भी यह प्रश्न उठा था कि इन तीनों नाटकों का वास्तविक रचयिता कौन है? इसका मूल कारण काव्यप्रकाशकार मम्मट का कथन "श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्।" (काव्यप्रकाश, उल्लास 1, श्लोक 2 की व्याख्या) है। यहाँ मम्मट ने लिखा है कि काव्य का प्रयोजन धन की प्राप्ति भी है। जैसे श्रीहर्ष आदि से 'धावक' आदि को धन की प्राप्ति। इस पर टीकाकारों ने अपना मत व्यक्त किया कि यह उक्ति श्रीहर्ष की 'रत्नावली' के विषय में है, जो हर्ष के नाम से विख्यात हुई है। टीकाकारों ने यह भी मत व्यक्त किया कि 'धावक' ने कुछ नाटक बनाये थे, जिन्हें श्रीहर्ष से धन लेकर अपने नाम से प्रचलित कर दिया। '**काव्यप्रकाश**' की निदर्शना टीका में 'धावकादीनामिव धनम्' के स्थान पर (बाणादीनामिव धनम्) पाठ मिलता है। इस पाठ के आधार पर डॉ. ह्राल और ब्यूलर ने इन तीनों नाटकों को बाणभट्ट की कृति माना है। कावेल का अपना पृथक् मत है। उनके अनुसार '**रत्नावली**' 'बाणभट्ट' की; '**नागानन्द**' 'धावक' की तथा '**प्रियदर्शिका**' किसी अज्ञात कवि की रचना है। इस प्रकार, इस विषय पर संक्षेप में विद्वानों के चार मत हैं। एक—तीनों नाटकों का लेखक धावक है; दो—तीनों का लेखक बाण है। तीन—तीनों के लेखक भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। और चार—तीनों नाटकों का रचयिता श्रीहर्ष ही है।

यहाँ विभिन्न मतों की जाँच की जा रही है और उनका खण्डन तथा मण्डन भी।

एक—तीनों नाटकों का लेखक 'धावक' है—

विद्वानों ने 'मम्मट' के ही उल्लेख के आधार पर इस मत का प्रतिपादन किया है। उन्होंने 'मम्मट' के उल्लेख का अर्थ किया है कि 'धावक' ने अपनी पुस्तक 'श्रीहर्ष'

को बेचकर धन प्राप्त किया। जब कि इसका यह अभिप्राय नहीं है कि 'धावक' ने अपनी पुस्तक बेचकर धन प्राप्त किया अपितु; इसका यह अभिप्राय है कि श्रीहर्ष की सभा में 'धावक' नाम का एक सुयोग्य कवि था और उसकी कवित्व-निपुणता से प्रसन्न होकर राजा ने उसे बहुत धन दिया। गुणग्राही राजा अपने आश्रित कवियों और कलाकारों का सम्मान समय-समय पर किया करते थे और उन्हें प्रचुर धनराशि भी दिया करते थे। यही बात 'धावक' के विषय में है। व्याख्याकारों ने 'मम्मट' की पंक्ति का असंगत अर्थ किया है।

दो—तीनों नाटकों के नाटककार बाणभट्ट हैं—

डॉ. हाल और ब्यूलर आदि विद्वान् तीनों नाटकों को बाणभट्ट की कृति मानते हैं। बाण की शैली और इन तीनों ग्रन्थों की शैली में पर्याप्त अन्तर है। 'बाण' से बौद्ध-भावना प्रधान 'नागानन्द' नाटक लिखवाना उसकी नैतिक हत्या करना होगा। 'बाण' 'हर्ष' का आश्रित कवि था। उसे 'हर्ष' से धन और सम्मान दोनों प्राप्त होता था। विद्वानों का सम्मान करनेवाले तथा आदर्श राजा श्रीहर्ष के विषय में यह मत व्यक्त करना अत्यन्त असंगत है कि 'बाण' को धन देकर उसकी रचनाओं को अपने नाम से प्रसिद्ध किया।

कावेल आदि विद्वानों का मत है कि तीनों नाटक भिन्न-भिन्न लेखकों की कृतियाँ हैं। परन्तु भाषा, शैली, वाक्य-विन्यास आदि की दृष्टि से तीनों रचनाएँ एक ही लेखक की कृति प्रतीत होती हैं।

तीन—तीनों नाटकों का नाटककार एक ही है—

कुछ विद्वान् यह मत व्यक्त करते हैं कि तीनों रचनाएँ भिन्न-भिन्न लेखकों की हैं। इस मत का प्रतिपादन करनेवालों में कावेल प्रमुख हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' दोनों एक की कृति हैं तथा 'नागानन्द' किसी अन्य की कृति है। परन्तु हमारे पास इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि तीनों एक ही लेखक की कृतियाँ हैं।

इस बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्य और तर्क इस प्रकार हैं—

क. सर्वप्रथम इन तीनों नाटकों में 'अलमतिविस्तरेण' से लेकर 'श्रीहर्षः' इत्यादि श्लोक तक प्रस्तावना अक्षरशः एक ही मिलती है।

ख. 'प्रियदर्शिका' के दो श्लोक 'अन्तःपुराणां विहितव्यवस्थः (प्रिय० 3.3, नागा० 4.1) और 'व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना' (प्रियदर्शिका 3.10, नागा० 1.15) 'नागानन्द' में भी मिलते हैं।

ग. तीनों नाटकों में कुछ गद्यग्राम भी समान रूप से मिलते हैं। जैसे—'कन्यका निर्दोषदर्शना भवन्ति' (नागा० 1) तथा 'निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम्' (प्रिय० 2), 'अयं मध्यमध्यास्ते नभस्तलस्य भगवान् सहस्रदीधितिः' (नागा० 1) तथा 'अये कथं नभोमध्यमास्ते भगवान् सहस्रदीधितिः'; 'भो वयस्य प्रच्छादयानेन

कदली पत्रेणेमां चित्रगतां कन्यकाम्' (नागा०2) तथा 'भो वयस्य प्रच्छादयैतच्चित्रफलकमनेन कदलीपत्रेण' (रत्ना०2) आदि।

इन समान गद्य-पद्य के अतिरिक्त वस्तु, भाव और विचार तीनों कृतियों में मिलते हैं। 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' में वस्तु और विचारों की बहुत अधिक समानता है। दोनों चार अंकों की नाटिकाएँ हैं। दोनों में वत्सराज उदयन की प्रेम-कथा का वर्णन है। दोनों की नायिकाएँ एक ही प्रकार के संकटों को झेलती हैं। 'रत्नावली' और 'नागानन्द' के विचारों में भी पर्याप्त समानता मिलती है।

कुछ विद्वान् 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' को तो एक ही लेखक की रचनाएँ मानते हैं; परन्तु 'नागानन्द' को किसी अन्य की रचना मानते हैं। उनका तर्क है कि 'नागानन्द' में बौद्ध धर्म की छाप है, जबकि 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' का सारा वातावरण हिन्दू धर्म का है। मैकडॉनल महोदय भी यही मत व्यक्त करते हैं। परन्तु सूक्ष्म विवेचन से यह तर्क निराधार सिद्ध होता है। 'नागानन्द' में लिखा है 'वंद्या खलु देवता:' जो कि हिन्दू-देवों के प्रति सम्मान का भाव प्रकट करता है। 'नागानन्द' में हिन्दू-वर्णाश्रम-व्यवस्था के प्रति कहीं भी अश्रद्धा नहीं दिखाई पड़ती है। वास्तव में 'नागानन्द' में हिन्दू और बौद्ध-धर्म, दोनों का समन्वय है। इसका लेखक दोनों धर्मों के प्रति उदार दिखाई पड़ता है।

श्री हर्ष की धार्मिक सहिष्णुता इतिहास में प्रसिद्ध है। वह जीवन के उत्तरार्ध में बौद्ध धर्म की ओर झुक गया था; फिर भी वह हिन्दू-धर्म का पूरा आदर करता था। अत: स्पष्ट है कि तीनों नाटक एक ही लेखक की रचनाएँ हैं। तीनों नाटकों में जिस भाव, भाषा और शैली का प्रतिपादन किया गया है, वह तीनों में समान है। प्रत्येक लेखक की अपनी विशिष्ट शैली होती है। वह उसके प्रत्येक ग्रन्थ में देखी जा सकती है। यह विशिष्टता तीनों नाटकों में समान रूप से दिखाई देती है। **वस्तुतः तीनों नाटकों के रचनाकार श्रीहर्ष ही हैं।**

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य और प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

1. तीनों नाटकों की प्रस्तावना में इनका लेखक श्रीहर्षदेव बताया गया है—'श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता प्रियदर्शिका नाम नाटिका कृता' (प्रियदर्शिका)। 'श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता' (रत्नावली)। श्रीहर्षदेवेनापूर्वरचनालंकृतं विद्याधरजातकप्रतिनिबद्धं नागानन्द नाम नाटकं कृतम्' (नागानन्द)। प्रियदर्शिका (1.3) और रत्नावली (1.5) में 'श्रीहर्षो निपुण: कवि:' श्लोक एक ही है।
2. बाण ने हर्ष-चरित में हर्ष को कवि, विद्वान्, शास्त्रज्ञ, काव्यामृतवर्षी सरस्वती का मूर्त रूप बताया है। इससे हर्ष का लेखकत्व स्पष्ट होता है।
3. चीनी यात्री ईत्सिंग ने अपने संस्मरण में हर्ष को लेखक तथा जीमूतवाहन

से संबद्ध कथा का प्रणेता तथा उसका रंगमंचीय आयोजक बताया है। इससे हर्ष का 'नागानन्द' का लेखक होना सिद्ध होता है।

4. कश्मीर के राजा जयपीड के समकालिक दामोदरगुप्त ने अपने ग्रन्थ 'कुट्टनीमतम्' में 'रत्नावली' के उद्धरण दिये हैं और उसे एक राजा की रचना बताया है। यह राजा सातवीं शती का हर्ष ही है।
5. सोड्ढल (ग्यारहवीं शती) ने उदयसुन्दरी कथा में हर्ष को राजा, कवीन्द्र, गीर्हर्ष और बाण का आश्रयदाता बताया है। इससे हर्ष का नाटककार होना सिद्ध होता है। ग्यारहवीं शती के जयदेव ने भी भास, कालिदास, बाण और मयूर आदि के साथ हर्ष को कवि और कविता का हर्ष कहा है। 'हर्षो-हर्षो हृदय-वसतिः' (प्रसन्नराघव, 1-22)।
6. मयूरशतक के संपादक मधुसूदन (1654 ई०) ने श्रीहर्ष को कवि और 'रत्नावली' का कर्त्ता कहा है।
7. मधुवन और बाँसखेड़ा (628 ई०) के अभिलेख स्वयं श्रीहर्ष की कृति हैं और इन पर श्रीहर्ष के हस्ताक्षर भी हैं। (स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्रीहर्षस्य०)।

उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि तीनों नाटकों का लेखक श्रीहर्ष ही है। तीनों नाटकों की भाषा, भाव, शैली आदि की समानता के आधार पर श्रीहर्ष को ही उनका रचयिता मानना उचित है।

तीनों नाटकों का रचना-क्रम :

तीनों नाटकों में 'प्रियदर्शिका' हर्ष की पहली रचना है। इस विषय में विद्वानों में कोई मतभेद नहीं है। 'प्रियदर्शिका' नाटिका में लेखक की अपरिष्कृत शैली के दर्शन होते हैं, जो उत्तम नाटिका को लेखक की प्रारम्भिक रचना सिद्ध करता है। इसमें मौलिकता का अभाव-सा लगता है। 'प्रियदर्शिका' कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के अनुकरण पर लिखी गयी है। 'रत्नावली' और 'नागानन्द' दोनों में लेखक की परिष्कृत और प्रौढ़ शैली का परिचय प्राप्त होता है। भाव, विचार और शैली में प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। इन दोनों कृतियों के रचनाक्रम के संबन्ध में विद्वानों में मतभेद है। एस. एम. परांजपे आदि विद्वानों का मत है कि 'प्रियदर्शिका' के बाद 'नागानन्द' हर्ष की दूसरी कृति है। इनका मत है कि 'रत्नावली' हर्ष की तीसरी रचना है। यह नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से आदर्श रचना है। धनंजय ने 'दशपूरक' में इसी के आधार पर नाटक में पंच-संधि आदि अंगों का विभाग किया है। परांजपे महोदय का कथन है कि 'नागानन्द' और 'रत्नावली' में नायिका द्वारा फाँसी लगाकर आत्महत्या करने की चेष्टा वाली घटना दोनों में समान रूप से

प्रयुक्त हुई है। परन्तु 'नागानन्द' में यह घटना पहले घटित हुई है; क्योंकि यह 'नागानन्द' की कथा गुणाढ्य कृत बृहतकथा में भी आयी है। लेखक को यह घटना प्रिय लगी, अतः उसने इसे 'रत्नावली' में भी प्रयुक्त किया।

परन्तु प्रो. चन्द्रशेखर और कर्माकर दोनों इस मत के विपरीत हैं। इनका कहना है कि 'रत्नावली' हर्ष की दूसरी रचना है। 'नागानन्द' तीसरी कृति है। 'नागानन्द' रत्नावली की अपेक्षा किसी भी रूप में हीन नहीं है। 'नागानन्द' में आदर्श मातृ-पितृ प्रेम का तथा उत्कृष्ट परोपकार-भावना का प्रतिपादन किया गया है। शृंगार-रस गौण रूप में है। इन विद्वानों का मत है कि एक उच्चकोटि का लेखक उच्च आदर्श का प्रतिपादन करनेवाली रचना का निर्माण करने के बाद रत्नावली जैसी सांसारिक एवं प्रणय-कथा से युक्त कृति की रचना करे, संभव नहीं प्रतीत होता। आत्महत्या वाली घटना के संबन्ध में संभव है कि गुणाढ्य-कृत मूल कथा नागानन्द की रचना के पूर्व लेखक ने पढ़ी हो और रत्नावली में उसका प्रयोग किया हो। बाद में बौद्ध धर्म की ओर झुकाव हो जाने के कारण नागानन्द में भी इसी घटना को प्रयुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' दोनों में वस्तु-भाव और वातावरण में पर्याप्त समानता है। अतः दोनों रच-नाओं के बीच समय का अधिक व्यवधान नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष को 'प्रियदर्शिका' की रचना के बाद मन में कुछ असंतोष-सा रहा हो और उसने इस रचना की कमी को दूर करने के लिए उसी आधार पर 'रत्नावली' की रचना की। इसमें हर्ष की परिष्कृत और प्रौढ़ शैली मुखरित हुई। रत्नावली एक उत्कृष्ट कृति सिद्ध हुई। प्रियदर्शिका और रत्नावली की दृष्टि से नागानन्द का प्रतिपाद्य दोनों से भिन्न है। इसमें शुद्ध सात्त्विक मनोवृत्ति का प्रतिपादन है, जो किसी भी व्यक्ति के उत्तरार्ध के जीवन में प्रस्फुटित होता है। अतः यह हर्ष के उत्तरार्ध के जीवन की रचना है। यह बात युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होती कि लेखक उदयन की प्रणय-कथा को लेकर प्रियदर्शिका की रचना करे। उसके बाद बोधिसत्त्व जीमूत-वाहन को लेकर नागानन्द की रचना करे। फिर वत्सराज उदयन की प्रणय-कथा की ओर लौट आये। इस संबंध में हर्ष की व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ भी विशेष उल्लेखनीय हैं। हर्ष अपने जीवन के उत्तरार्ध में बौद्ध धर्म की ओर झुक गया था। उसने अहिंसा, परोपकार आदि बौद्ध धर्म के गुणों को अपने जीवन का अंग बना लिया था। उसके इन्हीं विचारों का दर्शन हमें 'नागानन्द' में होता है। अतः स्पष्ट है कि 'प्रियदर्शिका' के बाद 'रत्नावली' की रचना हुई और उसके बाद 'नागानन्द' की रचना हुई।

प्रियदर्शिका : संक्षिप्त कथा और समीक्षा

प्रथम अंक

कौशाम्बी के राजा वत्सराज उदयन हैं। महासेन प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता उसकी रानी है। एक दिन वत्सराज उदयन के दरबार में आकर निवेदन करता है कि वह महाराज दृढ़वर्मा का कंचुकी है। महाराज दृढ़वर्मा के दिन आजकल अच्छे नहीं हैं। कालिंगाधिपति ने उन्हें बन्दी बना लिया है। क्योंकि उनकी प्रियदर्शिका नाम की एक कन्या है, जिसे वह चाहता था। दृढ़वर्मा उसे आपको (वत्सराज को) सौंपना चाहते थे। अकस्मात् एक विपत्ति आ खड़ी होती है। उनके बन्दी हो जाने पर वह विचार करता है कि यदि मैं उनकी पुत्री प्रियदर्शिका को आपकी सेवा में पहुँचा दूँ तो मेरे स्वामी का मनोरथ सफल हो जाएगा और मैं कुछ अंशों में उऋण भी हो जाऊँगा। इसके अनुसार ही वह उस कन्या को लेकर चला और रास्ते में दृढ़वर्मा के मित्र विन्ध्यकेतु के घर पर उस कन्या को छोड़कर अगस्त्य तीर्थ में स्नान करने गया। इसी बीच वह जब लौटा, तो किसी ने विन्ध्यकेतु का वध करके उस स्थान को पूरी तरह से जनशून्य कर दिया। कन्या का भी पता नहीं चला। बहुत ढूँढ़ने पर भी जब वह कन्या नहीं मिली, तब वह उनके आपके पास यह समाचार लेकर आया और बताया कि यहाँ से मैं जाकर अपने स्वामी की ही सेवा में अपना जीवन बिताऊँगा। यह कहकर वह चला गया।

राजा विदूषक से विचार-विमर्श करता है और कहता है कि मैंने विजयसेन को विन्ध्यकेतु के ऊपर चढ़ाई करने के लिए भेजा था, पर वहाँ से आज तक कोई नहीं आया। इसी बीच विजयसेन अमात्य रुमण्वान् के साथ उपस्थित होता है। विजयसेन विन्ध्यकेतु का समाचार सुनाते हुए कहता है कि महाराज आपके कोप का फल विन्ध्यकेतु को भोगना पड़ा। राजा विस्तार से सारा समाचार जानना-सुनना चाहते हैं। विजयसेन आक्रमण का विवरण सुनाते हुए कहता है कि विन्ध्यकेतु ने हमारे आक्रमण का बहादुरी के साथ सामना किया। अपने सहायकों के समाप्त हो जाने पर भी वह वीरता के साथ लड़ता रहा। विन्ध्यकेतु के मारे जाने पर गाँव के लोग विन्ध्य के शिखरों पर चले गये और वह स्थान उजड़ गया। विन्ध्यकेतु के घर में 'हा तात', 'हा तात' इस प्रकार विलाप करती हुई उसकी एक लड़की पायी गयी है, जो सत्कुल के अनुरूप है। उसे हम यहाँ ले आये हैं। इसके बाद जैसी आपकी आज्ञा हो। वत्सराज उस वीर शत्रु के वीरोचित मरण से बड़े प्रभावित हुए और उस वीर

कन्या का नाम आरण्यका रखकर महारानी वासवदत्ता के पास भेज दिया। यह आदेश भी दिया कि इस कन्या को संगीत तथा अन्य कलाओं की शिक्षा दी जाय और जब यह विवाह के योग्य हो जाय तो उन्हें स्मरण दिला दें।

राजा रुमण्वान् विजयसेन का आतिथ्य सत्कार कर कलिंग विजय के लिए भेजने का आदेश देते हैं।

द्वितीय अंक

राजा नियम और उपवास से क्षीण महारानी वासवदत्ता को देखने की अभिलाषा व्यक्त करता है। दोनों वासवदत्ता के दर्शन के लिए धारागृह की पुष्प-वाटिका की ओर मार्ग की शोभा का आस्वादन करते हुए प्रस्थान करते हैं। महा-रानी वासवदत्ता की चेटी इन्दीवरिका महारानी की आज्ञा के अनुसार आरण्यका को साथ लेकर पुष्प चुनने के लिए प्रस्थान करती है। आरण्यका को यह आज्ञा अपमानजनक प्रतीत होती है; फिर भी वह पुष्प चुनने के लिए वापी की ओर चेटी के साथ जाती है। इसी बीच राजा और विदूषक वहाँ पहुँच जाते हैं। विदूषक आरण्यका को देखकर कहता है कि यह कौन स्त्री है, जो वनदेवी के सदृश लग रही है? राजा उसे नहीं पहचानता। अतः अपनी असमर्थता प्रकट करता है। इसी बीच इन्दीवरिका वहाँ दिखाई पड़ती है। दोनों इन्दीवरिका और आरण्यका को देखकर झाड़ी में छिपकर देखने लगते हैं। इन्दीवरिका आरण्यका से कहती है कि तू कमल के फुल चुन ले। वह कमलिनी-पत्र में शेफालिका के पुष्प चुनकर आती है। दोनों सखियों को बातें करते देखकर विदूषक राजा से कहता है कि दोनों सखियों की बातें ध्यान से सुननी चाहिएँ। उनके वार्तालाप को सुनकर राजा को यह ज्ञात होता है कि आरण्यका विन्ध्यकेतु की पुत्री है और अभी अविवाहिता है। दोनों सखियाँ पुष्प चुनती हैं। राजा और विदूषक आरण्यका का पुष्प चुनना देखते हैं। इस बीच भौंरे आरण्यका को परेशान करते हैं। वह इन्दीवरिका को रक्षा के लिए पुकारती है। विदूषक राजा से कहता है कि जबतक वह दासी नहीं आती, आप ही उसकी भौंरों से रक्षा कीजिए। राजा उद्विग्न आरण्यका को गले से लगाकर भौंरों से उसे बचाता है। आरण्यका यही समझती है कि यह इन्दीवरिका ही है। परन्तु जब वह आँख खोलती है और उसे विदूषक से यह ज्ञात होता है कि ये राजा हैं, तो उसे लज्जा आ जाती है। वह मन में सोचती है ये ही वह महाराज हैं, जिनके निमित्त पिताजी ने मेरा सम्प्रदान किया था। इसी समय चेटी आती हुई दिखाई देती है। राजा विदूषक के संकेत पर वहाँ से हट जाते हैं। चेटी आरण्यका को साथ लेकर अन्तःपुर की ओर जाती है। आरण्यका के मन में राजा के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाता है। आरण्यका के चले जाने पर राजा भी उदास मन से अन्तःपुर की ओर चला जाता है।

तृतीय अंक

आरण्यका राजा के प्रति आसक्त हो जाती है। वह काम-पीड़ा से बेचैन है। मनोरमा उसे समझाती है कि जब तुम राजा की आँखों में बस गयी हो तब विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। राजा स्वयं कोई ऐसा उपाय करेंगे, जिसमे तुम उनसे मिल सकोगी। आरण्यका मनोरमा से कहती है कि महारानी के रूप-गुण शृंखला में बद्ध महाराज के लिए यह बात नहीं हो सकती है। फलतः मेरा मरना अवश्यंभावी है। मनोरमा आरण्यका को समझाती है। इसी समय आरण्यका को ढूंढ़ता हुआ विदूषक वहाँ आ जाता है। उसे देखकर मनोरमा कहती है कि मैंने तुम्हारी सब बातें जान ली हैं। तुम राजा की प्रेयसी आरण्यका को ढूंढ़ रहे हो। कहो तो मैं यह बात महारानी से कह दूं। परन्तु तुम्हारी आशंका व्यर्थ है। आरण्यका के लिए अपने प्रिय वयस्क की जैसी अवस्था का वर्णन तुमने किया है, महाराज के लिए आरण्यका की अवस्था उससे भी दुगुनी है। वसन्तक, तुम्हारे दर्शन से ही इसका संताप कम हो गया। वह स्वयं कमलिनी-पत्रों को हटा रही है। तुम भी कमलिनी-पत्र के लिए आये हो, चाहो तो ये कमलिनी-पत्र ले लो। विदूषक कहता है कि तुम्हारी सखी बड़ी लज्जा-शीला है फिर इन दोनों का समागम कैसे होगा। मनोरमा कुछ देर सोचकर विदूषक के कान में कुछ कहती है—वह चला जाता है।

इधर अन्तःपुर में महारानी और राजा के परिणय-प्रसंगों की कथा पर आधारित सांकृत्यायनी का लिखा नाटक खेला जानेवाला था। इस अभिनय में मनोरमा राजा का और आरण्यका रानी का अभिनय करेगी, यह निश्चित किया गया था। राजा सभी दर्शकों के एकत्र होने पर योजना के अनुसार सज्जा-गृह में पहुँच जाता है और मनोरमा से राज परिधेय-वस्त्र-आभूषण लेकर अभिनय के लिए तैयार हो जाता है। आरण्यका वासवदत्ता के रूप में सुन्दर अभिनय करती है। राजा स्वयं ही अपना अभिनय करता है। इस प्रकार अभिनय के बहाने दोनों प्रेमी-प्रेमिका अपना मनोरथ पूर्ण करते हैं। अभिनय में कुछ दृश्यों को देखकर वासवदत्ता को अस्वाभाविक-सा लगा, इसलिए उन्होंने रचयित्री को फटकारा भी। विदूषक इस समय अन्दर सो रहा था। वासवदत्ता वहाँ पहुँच जाती है। महाराज भी यहीं होंगे, यह सोचकर उसे जगाकर पूछती है। नींद से सहसा उठकर विदूषक कहता है कि मनोरमा, हमारे प्रियवयस्क अभिनय करके आ गये या नहीं ? वासवदत्ता को यह ज्ञात हो जाता है कि महाराज स्वयं अभिनय कर रहे थे। वासवदत्ता आरण्यका और विदूषक दोनों को पकड़कर ले जाती है। राजा के अनुनय पर बिना ध्यान दिये वह वहाँ से चली जाती है। राजा उसे मनाने के लिए अन्तःपुर की ओर जाता है।

चतुर्थ अंक

राजा और रानी दोनों एक-दूसरे से रुष्ट हैं। एक दिन वासवदत्ता की माता अंगारवती ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को पत्र लिखा कि उनकी बहन के पति दृढ़वर्मा वर्षों से कलिंगराज के यहाँ बन्दी हैं। तुम्हारे पति उनके उद्धार का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। क्या यह उचित है? इस पत्र को वासवदत्ता ने पढ़ा और वह चिन्ता में पड़ गयी। इधर राजा आरण्यका के बन्धन से चिन्तित थे। उसकी मुक्ति का उपाय सोच रहे थे। विदूषक के साथ विचार-विमर्श के बाद रानी को मनाना ही आरण्यका की मुक्ति का उपाय प्रतीत हुआ। राजा वासवदत्ता को मनाने के लिए विदूषक के साथ उसके पास पहुँचे। वे महारानी को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। राजा को ज्ञात होता है कि अंगारवती वाले पत्र का समाचार रानी को ज्ञात हो चुका है। राजा वासवदत्ता से कहते हैं कि विजयसेन के नेतृत्व में हमारी सेना ने कलिंगराज पर आक्रमण कर रखा है। उसके बाह्य प्रदेशों पर अधिकार करके उसके प्रताप को शून्य कर दिया है। शीघ्र ही कलिंगराज बन्दी होगा या मारा जायगा। तभी प्रतीहारी द्वार पर दृढ़वर्मा के कंचुकी के साथ विजय-सेन के उपस्थिति की सूचना देती है। दोनों राजा के समक्ष उपस्थित होकर कलिंग विजय से अवगत कराते हैं और सूचित करते हैं कि दृढ़वर्मा को उनका राज्य वापस मिल गया है। दृढ़वर्मा का कंचुकी दृढ़वर्मा का संदेश राजा से कहता है कि आपकी कृपा से सब मनोरथ पूर्ण हो गये। अब हमारे प्राण आपके हैं। आप इन प्राणों का यथेच्छ विनियोग करने में स्वतंत्र हैं। यद्यपि हमारी पुत्री आपको समर्पित की जा चुकी थी, परन्तु उसके खो जाने के कारण वह संबंध नहीं हो पाया, इसका दुःख था। फिर भी वासवदत्ता के पति होने के कारण आपने उसे दूर कर दिया है। वासवदत्ता कंचुकी से पूछती है कि मेरी बहन कैसे खो गयी? कंचुकी पूरा वृत्तान्त सुनाता है।

तभी मनोरमा प्रवेश कर सूचित करती है कि आरण्यका मद्य की जगह दिये गये विष के पीने से बेहोश हो गयी है। वासवदत्ता इस समाचार से घबड़ा जाती है। आरण्यका को वहाँ तत्काल लाने को कहती हैं। और नागलोक से विषचिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर आये हुए महाराज से उसकी चिकित्सा करने की प्रार्थना करती हैं। महारानी की व्यग्रता और बढ़ जाती है, जब कंचुकी आरण्यका को देखकर कहता है कि ये तो हमारी राजकुमारी प्रियदर्शिका हैं। महारानी के बार-बार प्रार्थना करने पर महाराज आरण्यका की चिकित्सा करते हैं, जिससे वह शीघ्र स्वस्थ हो जाती है। कंचुकी प्रियदर्शिका के पैरों पर गिरकर उसके माता-पिता के सकुशल होने और पुनः राज्यत्व प्राप्त होने की सूचना देता है। वासवदत्ता प्रियदर्शिका का हाथ पकड़कर राजा को अर्पित कर देती है। सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

प्रियदर्शिका की समीक्षा

'प्रियदर्शिका' हर्ष की प्रथम कृति है। इसमें कवि की कल्पना-शक्ति, प्रौढ़ता, भाषा-सौष्ठव और चरित्र-चित्रण में पूर्ण विकास नहीं आ पाया है; तथापि सुन्दर कवित्व-रचना की कुशलता घटनाओं का संयोजन और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति प्रशंसनीय है। तृतीय अंक में गर्भ नाटक विशेष महत्त्वपूर्ण है और कवि की कल्पना-शक्ति का परिचायक है।

हर्ष की प्रथम कृति होने के कारण इसमें कतिपय अप्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इसके प्रथम अंक में पूर्वराग की स्थापना न करना अनाटकीय प्रतीत होता है। सामान्यतया प्रियदर्शिका का वस्तु-विन्यास सफल है। 'प्रियदर्शिका' और रत्नावली' में अत्यधिक साम्य कुछ खटकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्रियदर्शिका' में जिन दोषों की उद्भावना की गयी है, उनको दूर करने के लिए रत्नावली की रचना की गयी है। 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' परस्पर-संबद्ध नाटिका हैं। रत्नावली को प्रियदर्शिका का परिष्कृत रूप ही समझना चाहिए।

प्रियदर्शिका में शृंगार अंगीरस है। यह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर संभोग में शान्त होता है। अन्य रस अंग रूप में आये हैं। शृंगार के दोनों पक्षों का इसमें वर्णन है। रति-भाव का आश्रय उदयन है और आलम्बन आरण्यका है। वसन्त आदि के दृश्य उद्दीपन विभाव हैं। नायक की शृंगारिक चेष्टाएँ अनुभाव हैं। व्यभिचारी भावों को भी स्थान दिया गया है। इस प्रकार सभी अंगों से पुष्ट होकर शृंगार रस का परिपाक होता है।

प्रियदर्शिका में युद्ध-वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन, स्त्री-सौन्दर्य, प्रणय-कोप, मनोवैज्ञानिक चित्रण आदि प्रमुख हैं। इसमें वैदर्भी रीति का विशेष प्रयोग हुआ है। कुछ स्थानों पर भावानुसार गौडी रीति का भी उपयोग हुआ है। अलंकारों का स्वाभाविक रूप में ही विनियोग हुआ है। श्रम-साध्य अलंकारों का अभाव है।

श्रीहर्ष ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत करते हैं। कवि के वर्णन में स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है। राजा ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न का वर्णन करते हुए कहता है कि—

आभात्यर्कांशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्तनैर्दीर्घिकाम्भ-
श्छत्राभं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति।
छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः
सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ॥प्रिय० 1.12

—तालाबों में मछलियाँ उछल रही हैं, मानो धूप से तालाब का जल उबल रहा हो। मोर अपना पंख फैलाकर उससे छतरी का काम ले रहा है।

प्यासे मृग का छौना थाले के जल के लोभ से पेड़ों की छाया में पहुँच रहा है। भौंरा हाथी के कपोल को छोड़कर उसके कान में घुस रहा है।

प्रेमी राजा उदयन वासददत्ता के दर्शन के लिए व्याकुल है। उपवास के कारण वासवदत्ता कृश है। राजा अपने मनोभावों को इस रूप में प्रकट करता है—

क्षामां मङ्गलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी-
मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्राप्तस्तनेन्दुद्युतिम्।
सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना चेतो ममोत्कण्ठते,
तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थामिवाद्य प्रियाम्॥प्रिय० 2-1

—अतिकृशांगी, केवल मंगलसूत्र को अलंकार-रूप में धारण करनेवाली मन्दभाषिणी, अति स्वच्छ मुखकान्ति से प्रातःकालीन चन्द्रमा को जीतनेवाली, नियम-उपवास आदि के कारण मेरे दर्शन के लिए उत्कण्ठित प्रिया वासवदत्ता को पुर्वानुराग की अवस्था में दुर्बलता को प्राप्त रूप में देखने के लिए मुझे उत्कण्ठा हो रही है।

प्रणयकुपिता वासवदत्ता का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। वासवदत्ता अपना क्रोध छिपाना चाहती है, परन्तु वह छिपाने में असमर्थ है। वाणी अस्पष्ट है! आँखों में लाली है और हृदय में कंपन। राजा वासवदत्ता से कहता है—

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युति-
र्माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम्।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः
कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते॥ प्रिय० 3.13

—यद्यपि आँखों से स्नेहपूर्ण भाव से देख रही हो, फिर भी उनकी कान्ति लालिमा लिये हुए है। वचन में मिठास है, फिर भी तुम्हारी यह गद्गद्वाणी बार-बार रुक रही है। इन साँसों को तुमने नियंत्रित कर लिया है, फिर भी स्तनों के कम्पन से गहरी साँस स्पष्ट दीख रही है। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक छिपाये जाने पर भी तुम्हारा यह कोप स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है।

कवि ने राजा की दुविधा-पूर्ण मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। राजा एक ओर वासवदत्ता के क्रोध से भयभीत है और दूसरी ओर आरण्यका के सुन्दर मुख को देखकर उन्मत्त है। वह घोर संकट में पड़ा हुआ है कि क्या करे, क्या न करे। वह आरण्यका को छोड़ भी नहीं सकता है और दूसरी ओर वासवदत्ता को भी क्रुद्ध नहीं करना चाहता है। राजा कहता है—

स्वेदाम्भः कणभिन्नभीषणतरभ्रूभङ्गमेकं रुषा
त्रासेनापरमुत्प्लुतोत्प्लुतमृगव्यालोलनेत्रोत्पलम्।
उत्पश्यन्नमहमग्रतो मुखमिदं देव्याः प्रियायास्तथा
भीतश्चोत्सुकमानसश्च महति क्षिप्तोऽस्म्यहं संकटे॥ प्रिय० 3.15

—एक ओर क्रोध से निकले हुए पसीने की बूंदों से युक्त भयानक भ्रुकुटिवाली, और दूसरी ओर भय से भागते हुए हरिण-शिशु के चंचल नेत्रों के तुल्य नेत्रकमलवाली इस देवी और प्रिया के मुख को सामने देखकर मुझे भय और उत्सुकता ने भारी संकट में डाल रखा है।

कवि ने अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। भाग्य के विपरीत होने पर मनुष्य की कोई भी इच्छा पूर्ण नहीं होती है। भौंरा मकरन्द से परिपूर्ण कमल की कली का पान करने पहुँचता है और ठीक उसी समय पाले से जली हुई वह कली उसे मिलती है।

संजातसान्द्रमकरन्दरसां क्रमेण
पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृङ्गः।
दग्धा निपत्य सहसैव हिमेन चैषा
वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि ॥ प्रिय० 4.8

—प्रियदर्शिका विषपान से मूर्छित है। राजा उसकी अवस्था देखकर स्वयं को भी मूर्छित-सा अनुभव करता है। कवि ने असंगति अलंकार का बहुत सुन्दर चित्रण किया है कि विषपान प्रियदर्शिका ने किया है और उसका प्रभाव राजा पर पड़ रहा है—

एषा मीलयतीदमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिशः
कण्ठोऽस्याः प्रतिरुध्यते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छ्रादिमाः।
एतस्याः श्वसितं हृतं मम तनुर्निश्चेष्टतामागता
मन्येऽस्या विषवेग एव हि परं सर्वं तु दुःखं मम ॥ प्रिय० 4.9

—यह आँखें बन्द कर रही है और मेरी दिशाएँ अन्धकारपूर्ण हो रही हैं। इसका गला रुक गया है और मेरी आवाज़ कष्ट से निकल रही है। इसका श्वास बन्द हो रहा है और मेरा शरीर निश्चेष्ट हो रहा है। इसको केवल विष का वेग है, किन्तु शेष सभी दुःख मुझे हो रहे हैं। कवि श्लेष अलंकार के द्वारा कंचुकी और राजा की समानता बताता है। कंचुकी कहता है—

अन्तःपुराणां विहितव्यवस्थः पदे पदेऽहं स्खलितानि रक्षन्।
जरातुरः संप्रति दण्डनीत्या सर्वं नृपस्यानुकरोमि वृत्तम् ॥ प्रिय० 3.3

—राजा नगर के अन्दर की व्याख्या करता है और मैं अन्तपुर की देखभाल करता हूँ। मैं अन्तःपुर की प्रमाद से रक्षा करता हूँ। राजा नगरवासियों को त्रुटि से बचाता है। मैं वृद्धावस्था के कारण दण्ड प्राप्त हूँ और राजा दण्डनीति से कार्य करता है। इस प्रकार मैं राजा के सारे कार्यों का अनुकरण करता हूँ।

छन्द-विन्यास—प्रियदर्शिका में सात छन्दों का प्रयोग हुआ है। ये हैं—शार्दूल-विक्रीडित, स्रग्धरा, आर्या, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी और शिखरिणी। इनमें शार्दूलविक्रीडित—बीस, स्रग्धरा—आठ, और आर्या—नौ हैं।

नागानन्द : संक्षिप्त कथा और उसके मूल स्रोत

प्रथम अंक

विद्याधरों के सम्राट् जीमूतकेतु वृद्धावस्था आने पर राज्यभार अपने पुत्र जीमूतवाहन को सौंपकर वानप्रस्थी हो जाते हैं। किन्तु मातृ-पितृ-भक्त युवराज जीमूतवाहन को माता-पिता की सेवा के बिना चैन नहीं प्राप्त होता। वे भी राज्य का शासन मंत्रियों में विभक्त कर माता-पिता की सेवा के लिए उनके पास वन में चले जाते हैं। पिता पुत्र को आज्ञा देता है कि वह उनके आश्रम बनाने योग्य कोई अच्छा स्थान खोजे। जीमूतवाहन अपने मित्र विदूषक के साथ मलय पर्वत की ओर जाते हैं। वहाँ उन्हें एक अच्छा-सा तपोवन मिल जाता है। समीप ही स्थित एक गौरी-मन्दिर से उन्हें मधुर संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ती है। दोनों का ध्यान उस ओर खिंच जाता है। दोनों देव-मन्दिर की ओर प्रस्थान करते हैं। सहसा रुककर देव-मन्दिर न जाकर पास ही तमाम वृक्षों की झाड़ में छिपकर उचित अवसर की प्रतीक्षा करते हैं। दोनों देखते हैं कि एक परम सुन्दरी वीणा हाथ में लिये हुए सखी-सहित गौरी देवी को मना रही है। संगीत समाप्त होने पर दोनों के वार्तालाप को जीमूतवाहन और विदूषक सुनते हैं। नायिका की सुन्दरता को देखकर दोनों अपना-अपना अनुमान लगाते हैं कि यह कन्या कौन हो सकती है। इसी बीच दोनों कन्याओं के वार्तालाप में नायिका अपनी सखी से कहती है कि आज गौरी देवी ने स्वप्न में मुझे दर्शन दिये और वर दिया कि शीघ्र ही विद्याधरों का सम्राट् उससे विवाह करेगा। विदूषक उचित अवसर समझकर जीमूतवाहन का हाथ पकड़कर उसे खींच ले जाता है और कहता है कि आपका कल्याण हो। चतुरिका सत्य ही कहती है कि देवी ने वह वर ही आपको दिया है। चेटी नायिका से कहती है कि इस अलौकिक चेहरे से मैं अनुमान करती हूँ कि देवी द्वारा प्रसाद-रूप में दिया हुआ यही वर है। नायिका स्पृहा और लज्जा के कारण चेटी को दूसरी जगह चलने को कहती

इसी बीच एक तपस्वी आता है और मलयवती को अपने साथ तपोवन ले जाता है।

द्वितीय अंक

काम-पीड़ा से व्याकुल मलयवती विश्राम करने के लिए चन्दनलता-गृह की ओर चेटी के साथ प्रस्थान करती है। परन्तु उसका मन गौरी-मंदिर की ओर खिचा चला जाता है। अतः वह चेटी से चन्दन-लतागृह के मार्ग के स्थान पर भगवती गौरी के मंदिर का मार्ग दिखाने के लिए कहती है। दोनों चन्दन लता-गृह पहुँचकर चन्द्र-मणि के शिलातल पर बैठती हैं। मलयवती काम-पीड़िता है। अतः चन्दन लता-गृह उसके संताप को दूर नहीं कर पाता। चन्दन लता के रस का लेप उसके संताप को दूर नहीं करता। केले के पत्ते की वायु उसे गरम लगती है। इस बीच जीमूतवाहन विदूषक से अपनी विरह-कथा सुनाते हुए लतागृह की ओर आते हैं। दोनों के पैरों की आहट सुनकर दोनों सखियाँ भय से पास के अशोक वृक्ष के पीछे छिप जाती हैं। दोनों मित्र लतागृह में पहुँचते हैं। दोनों उस चन्द्रकान्त शिला पर बैठते हैं। जीमूतवाहन अपने मन की बात विदूषक से कहता है और शिलातल पर अपनी प्रियतमा का चित्र बनाना चाहता है। विदूषक चित्र बनाने के लिए उसे पाँच रंगों के पत्थर लाकर देता है। जीमूतवाहन शिला पर चित्र अंकित करता है। नायिका को आशंका होती है कि वह किसी और का चित्र बना रहा है। उसका मन कहीं अन्यत्र रमा हुआ है। इस बीच मलयवती का भाई मित्रावसु जीमूतवाहन के साथ मलयवती के विवाह का प्रस्ताव लेकर आता है। जीमूतवाहन उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है; क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं है कि आगन्तुक की बहन ही उसकी प्रियतमा है। इस पर मलयवती का दिल टूट जाता है और वह फाँसी लगाकर आत्म-हत्या की चेष्टा करती है। सखी के हल्ला मचाने पर जीमूतवाहन वहाँ पहुँचकर उसे आत्म-हत्या करने से रोकता है। कारण पता करने पर ज्ञात होता है कि वही मित्रावसु की बहन है। जीमूतवाहन नायिका को ले जाकर दिखाता है कि शिला पर उसी का चित्र है, अन्य किसी का नहीं। जीमूतवाहन के पिता भी सिद्धराज की कन्या से अपने पुत्र के विवाह की स्वीकृति दे देते हैं।

तृतीय अंक

जीमूतवाहन और मलयवती के विवाह के पश्चात् खूब आमोद-प्रमोद मनाया जाता है। शेखरक मदिरा-पान कर मस्त है। कुसुमाकर उद्यान में सभी मदिरा-पान का आनन्द उठाते हैं। विदूषक भौंरों से बचने के लिए स्त्री का वेश बनाकर एक चादर से घूँघट ताने उद्यान में प्रवेश करता है। विट उसे अपनी प्रेमिका समझकर उसके पीछे लग जाता है। वह किसी प्रकार शेखरक और चेटी से स्वयं को बचाता है। दोनों उसे मदिरा-पान कराना चाहते हैं। तदनन्तर वर के वेश में नायक, मलयवती और उसकी परिचारिकाएँ प्रवेश करती हैं। नायक नायिका का हाथ पकड़कर सखी और विदूषक के साथ पानोत्सव को देखने के लिए कुसुमाकर

उद्यान की ओर चल पड़ते हैं। बात ही बात में नायक नायिका के अंग-प्रत्यंगों का वर्णन करता चलता है। सखी भी विदूषक पर व्यंग्य करती चलती है। विदूषक रूठकर चल देता है। सखी उसे मनाने के लिए चली जाती है। एकान्त पाकर जीमूतवाहन-मलयवती प्रेम की बातें करते हैं। इसी बीच चेटी आकर सूचना देती है कि मित्रावसु आपसे किसी कार्यवश मिलना चाहते हैं। मलयवती चेटी के साथ चली जाती है। मित्रावसु जीमूतवाहन को सूचित करते हैं कि शत्रु मातंग ने उनके साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया है। अतः वह सिद्ध-सेना लेकर शत्रुओं का विनाश करने की स्वीकृति माँगता है। जीमूतवाहन के हृदय में शत्रु-मित्र का भाव ही नहीं है। जो सभी के कल्याण की समान भावना रखता है, वह मित्रावसु को हिंसा की स्वीकृति कैसे देता? वह मित्रावसु को समझाकर शान्ति का मार्ग अपनाने को कहता है।

चतुर्थ अंक

जीमूतवाहन अपने साले मित्रावसु के साथ एक दिन समुद्र का ज्वार-भाटा देखने के लिए निकलता है। उसे समुद्र के किनारे हड्डियों का विशाल ढेर दिखाई पड़ता है। मित्रावसु से पूछने पर उसे ज्ञात होता है कि गरुड़ भगवान् प्रतिदिन बारी-बारी से आने वाले एक-एक नाग को खाया करते हैं और जिन्हें वे खाया करते हैं, ये उन्हीं के अस्थि-पंजर हैं। जीमूतवाहन को गरुड़ की हिंसा-वृत्ति पर बहुत खेद होता है। प्रतिहारी आकर मित्रावसु को बुला ले जाती है। जीमूतवाहन समुद्र तट पर घूमता है। सहसा उसके कानों में किसी के रोने की आवाज सुनायी पड़ती है। वह आगे बढ़ता है तो देखता है कि शंखचूड नाम का एक नाग लाल वस्त्र पहने गरुड़ की बलि के लिए बध्य शिला की ओर ले जाया जा रहा है और साथ में उसकी वृद्धा माता छाती पीट-पीटकर रो रही है। जीमूतवाहन का हृदय करुणा से भर जाता है। वह कहता है, यदि दुःखी, मरणासन्न एवं बन्धु-बान्धवों से त्यागे हुए इसे मैं नहीं बचाता हूँ, तो मेरे शरीर-धारण का क्या लाभ? वह उसकी रक्षा करने का निश्चय करता है। परन्तु शंखचूड अपने जीवन के लिए दूसरों के जीवन की बलि होने नहीं देना चाहता। परोपकारार्थ जीवन-अर्पण करने का अवसर न मिलने पर जीमूतवाहन दुःखी होता है। शंखचूड गरुड़ के आने में देरी होने पर पास ही में स्थित दक्षिण गोकर्ण महादेव के दर्शन करने चला जाता है। संयोगवश इसी समय जीमूतवाहन के ससुराल से विवाह की प्रथा के अनुसार लगातार दस दिन पहने जानेवाले लाल रंग के वस्त्रों की जोड़ी आती है। जीमूतवाहन इसे परमात्मा की देन समझकर लाल वस्त्र पहनकर बध्य-शिला पर बैठ जाता है। गरुड़ आता है और उसे उठाकर भोजनार्थ शिखर पर ले जाता है। इसी बीच आकाश से पुष्प-वर्षा होने और दुन्दुभि बजने लगती है।

पंचम अंक

समुद्र के ज्वार-भाटा को देखने गये हुए जीमूतवाहन के देर तक न लौटने पर महाराज विश्वावसु आकुल हो जाते हैं। वे सुनन्द को जीमूतवाहन का पता लगाने के लिए भेजते हैं। सुनन्द जीमूतकेतु के पास पहुँचकर कहता है कि महाराज विश्वावसु ने आप लोगों के पास जीमूतकेतु की ख़बर लेने के लिए भेजा है। जीमूतकेतु और वृद्धा इस समाचार से व्याकुल हो जाते हैं कि मेरा लड़का यदि वहाँ नहीं है तो कहाँ है? जीमूतकेतु की बायीं आँख फड़कती है, जिससे उनका मन और भी आकुल हो जाता है। एकाएक उनके पैरो के पास आकाश से कोई वस्तु गिरती है। उसे देखने से ज्ञात होता है कि यह तो किसी के सिर का आभूषण चूडामणि है। जिसपर खून से सना मांस और बाल लगे हुए हैं। वृद्धा को यह अपने पुत्र जीमूतवाहन की चूडामणि प्रतीत होती है। इसी बीच लाल वस्त्र पहने हुए शंखचूड प्रवेश करता है। वह आँसू बहाता हुआ कहता है कि मेरे लिए यह धिक्कार की बात है। मेरे स्थान पर गरुड़ उस विद्याधर को लेकर आकाश में उड़ गया। वह गरुड़ के पीछे जाता है। वृद्धा शोक और आँसू में डूबे चेहरेवाले बालक को आता देखकर व्याकुल हो जाती है। वह रोता हुआ प्रलाप करता है कि 'हा···तीनों लोकों के चूडामणि तुमको मैं कहाँ देखूंगा?' जीमूतकेतु उसके पास जाकर पूछते हैं, क्या तेरा चूडामणि चुरा लिया गया है। वह कहता है, मेरा ही नहीं, अपितु तीनों लोकों का।

यह ज्ञात होने पर कि जीमूतवाहन ने स्वय को गरुड़ को अर्पण करके उसके प्राण बचाये हैं, सभी मूर्छित हो जाते है। शोक का सागर उमड़ जाता है। सभी के लिए एक साथ अग्नि में भस्म हो जाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता। शंखचूड के आश्वासन और परामर्श पर एक बार इस विचार से गरुड़ का पता चलाने की ठानते हैं कि कदाचित् उन्हें पुत्र के दर्शन हो जाएँ। वे उन्हें ढूंढ़ते हुए गरुड़वाले पर्वत शिखर पर पहुँच जाते हैं। उधर गरुड़ परेशान हैं कि यह कौन है—जो बुरी तरह नोचे-खसोटे और खाये जाने पर भी प्रसन्न है। सहसा शंखचूड वहाँ पहुँचकर गरुड़ से कहता है कि गरुड़देव, तुम्हारी बलि का नाग मैं हूँ। तुम तो विद्याधर जीमूतवाहन को खा रहे हो। यह क्या अनर्थ कर रहे हो? गरुड़ को बहुत पश्चात्ताप होता है कि उसके हाथ यह बोधिसत्त्व मारा गया है। जीमूतवाहन मृत्यु के सन्निकट है। वह माता-पिता को प्रणाम करने के लिए उठता है और गिरकर मूर्छित हो जाता है। गरुड़ अहिंसा व्रत ग्रहण कर वहाँ से उड़कर जीमूतवाहन और मरे हुए सर्पों को जीवित कराने के लिए स्वर्ग से अमृत की वृष्टि कराने के लिए चला जाता है। इसी बीच भगवती गौरी प्रकट होती हैं और अपने कमण्डलु से अमृत छिड़ककर जीमूतवाहन को जीवित कर देती हैं। अमृत-वृष्टि के साथ ही, सारे मृत नाग

जीवित होकर नागलोक को चले जाते हैं। भगवती गौरी जीमूतवाहन का अभिषक कर उसे विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बना देती है।

नागानन्द की कथा का मूल स्रोत

कतिपय विद्वानों ने 'नागानन्द' की कथा को मौलिक माना है। वस्तुतः यह मौलिक कथा नहीं है। इसका मूल स्रोत बृहत्कथा में मिलता है। गुणाढ्य ने ईसा की प्रथम शताब्दी में पैशाची प्राकृत में बृहत्कथा (बड्ढकहा) लिखी थी। वह इस समय अप्राप्य है। इसके दो संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तर मिलते हैं—

1. **बृहत्कथामंजरी**—यह क्षेमेन्द्र-रचित है और कश्मीर के राजा अवन्तिराज (1028-1062 ई०) के राज्यकाल में लिखी गयी थी।

2 **कथा सरित्सागर**—इसके लेखक सोमदेव हैं। यह कश्मीर-नरेश श्रीहर्ष (1089 से 1101 ई०) के राज्य-काल में लिखा गया है। इन दोनों ग्रन्थों में बोधिसत्त्व जीमूतवाहन की कथा मिलती है। नागानन्द के लेखक हर्षदेव ने गुणाढ्य की मूलकथा को आधार बनाया है। अनुमान है कि वह कथा उन्हें उपलब्ध थी। उसमें नाटकीय आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन किये गये हैं। साथ ही अपनी संकल्पना के अनुसार कुछ नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं।

नाटककार द्वारा मूल कथा में परिवर्तन—नाटककार ने मूल कथा में विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन किये हैं—

(1) मूल कथा में नायक अपने माता-पिता की सेवा के लिए अपना राज पाट छोड़कर वन में जाता है और अपनी दिव्य-शक्ति से यह पता लगाता है कि उसके बन्धु-बान्धव उसके राज्य पर आक्रमण करनेवाले हैं। नाटककार ने दिव्यशक्ति प्रदर्शन को हटाकर उसके स्थान पर शत्रु के रूप में मतंग की कल्पना की है और मित्रावसु के द्वारा आक्रमण की सूचना दिलायी है। इसके कारण कथा में वास्तविकता आ गयी है।

(2) मूलकथा में नायक गौरी के मंदिर में जाकर मलयवती को देखता है और वहीं उसके नाम आदि का पता लगा लेता है। साथ ही अपना भी नाम आदि उसको बता देता है। नाटककार ने नायक को विदूषक के साथ मन्दिर जाने का वर्णन किया है। और मलयवती से क्षणिक मिलन दिखाकर बीच में मुनि को लाकर इस प्रसंग को भंग कर दिया है। दोनों एक-दूसरे का नाम-पता आदि नहीं जान पाते हैं। इससे प्रेम-प्रसंग की पृष्ठभूमि बन जाती है।

(3) मूल ग्रन्थ में गौरी प्रकट होकर नायिका को आत्मघात से रोकती है। इसमें नाटककार ने यह कार्य नायक के द्वारा कराया है।

(4) मूलकथा में विट, चेट आदि की घटना का वर्णन नहीं है। तृतीय अंक

में इनका उल्लेख नाटककार की कल्पना है। इससे हास्य की सामग्री प्राप्त होती है।

(5) मूलकथा में नायक मणियुक्त वस्त्र पहनकर बध्य-शिला पर खड़ा होकर गरुड़ को नाग का भ्रम कराता है। नाटककार लाल वस्त्र पहनाकर उसे बध्य-शिला पर लाता है। इससे गरुड़ को बोध नहीं हो पाता है कि यह मनुष्य है; वरन् पक्षिराज उसे नाग ही समझता है।

(6) मूलकथा में नायक की चूड़ामणि मलयवती के पैरों पर गिरती है और पिता को दिव्यशक्ति से पुत्र की विपत्ति का ज्ञान होता है। नाटककार ने मणि को पिता के चरणों पर गिरना दिखाकर आदर्श पुत्र का चित्र उपस्थित किया है। इससे मृत्यु-समय में भी पिता के चरणों की भक्ति दिखायी गयी है।

(7) मूलकथा में केवल मलयवती के सती होने की बात है। नाटककार ने माता-पिता और शंखचूड को भी अग्नि में भस्म होने के लिए तैयार होने की बात का उल्लेख करके करुण रस के वातावरण को अधिक गम्भीर बना दिया है।

(8) मूलकथा में गरुड़ हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करता है। नाटककार ने उसे पश्चात्ताप की अग्नि में डाला है और वह अब तक के किये गये पापों के लिए भी पछताता है।

नागानन्द नाटक की समीक्षा

'नागानन्द' हर्ष की अन्तिम कृति मानी जाती है। इस पर बौद्ध धर्म का स्पष्ट प्रभाव है। इसमें अहिंसा, जीमूतवाहन को बोधिसत्त्व कहना, आत्मबलिदान, दान, दया, परोपकार और अहिंसा आदि का अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से वर्णन किया गया है। नाटकीय दृष्टि से यह रत्नावली से उत्कृष्ट नहीं है। तथापि भाव-सौंदर्य, भाषा-सौष्ठव, सरलता, सरसता आदि गुणों की दृष्टि से यह नाटक विशेष महत्त्व-पूर्ण है। हर्ष के अन्य दो नाटकों में शृंगार-रस की प्रधानता है; किन्तु इसमें करुण भाव की प्रधानता है। सांसारिक जीवन के पूर्व पक्ष में शृंगार-रस की प्रधानता रहती है और उत्तर पक्ष में करुण की। अतः नागानन्द को हर्ष की अन्तिम कृति माना जाता है। इसके पूर्वार्ध में जीमूतवाहन और मलयवती के विवाह का वर्णन है और उसमें शृंगार-रस मुख्य है। अन्त के दो अंकों में आत्म-बलिदान की भावना मुख्य होने के कारण दयावीर और करुण रस की प्रमुखता है।

संस्कृत-साहित्य के उत्कृष्ट नाटकों में इसकी गणना होती है। इसका नायक जीमूतवाहन राज्य के सुखों को छोड़कर माता-पिता की सेवा के लिए वन चला जाता है। पत्नी के प्रेम को भी छोड़कर शंखचूड नामक नाग की रक्षा के लिए अपना बलिदान देता है। संस्कृत-नाटकों में यह नवीन कल्पना है। इस नाटक में परस्पर-विरोधी शृंगार और करुण रस का चित्रण है। दोनों रसों को इस प्रकार रखा गया है कि उनका विरोध प्रकट नहीं हो पाता है। इस नाटक के द्वारा मानव-जाति को त्याग और बलिदान की उच्च शिक्षा दी गयी है।

इस नाटक की भाषा सरल और सरस है। इसमें वैदर्भी रीति मुख्य है। कहीं-कहीं पर गौड़ी रीति की भी सुन्दर छटा दिखायी पड़ती है।

नागानन्द वीर (दयावीर) रस का नाटक है। वीर रस के मूल में उत्साह की भावना काम करती है। यह भावना चार रूपों में प्रकट होती है—

1. शत्रु को नष्ट करने के लिए।
2. धर्म के लिए प्राण देने की कामना।
3. दुःखितों के दुःख-निवारण हेतु सर्वस्व तक दान देने की कामना।
4. पीड़ितों के रक्षार्थ अपने आपको बलिदान करने की भावना।

इस प्रकार उत्साह के भेद के कारण वीर-रस चार प्रकार का होता है—युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर, दयावीर। *नागानन्द नाटक* चौथे प्रकार के वीर से सम्बन्ध रखता है। इसमें जीमूतवाहन दयावीर है और वह शंखचूड नामक नाग की रक्षा के लिए अपना बलिदान करता है। लोग इस नाटक को बहुधा व्यावहारिक ढंग से शान्त-रस का कह देते हैं। पर पारिभाषिक दृष्टि से यह वीर (दयावीर) रस का ही है। वीर रस ही यहाँ अंगी रस है।

कतिपय आलोचकों ने आपत्ति उठायी है कि इसमें दो विरोधी रसों का वर्णन किया गया है। वैराग्य की भावना से शान्त रस प्रदर्शित किया गया है और मलयवती से प्रेम के कारण श्रृंगार रस है। अन्त में वह विवाह के रूप में परिणत होता है। शान्त और श्रृंगार विरोधी रस हैं। दो विरोधी रसों का एकत्र वर्णन करना नाटकीय नियमों के विरुद्ध है। किन्तु यह आपत्ति उचित नहीं है। शास्त्रीय नियमानुसार एक काल में दोनों रसों का उत्पन्न होना परस्पर विरोधी है। पर यदि कालान्तर में एक के बाद दूसरा रस आता है तो कोई विरोधी नहीं है। राग के पश्चात् वैराग्य हो सकता है और वैराग्य के पश्चात् राग भी हो सकता है। यह नाटक मुख्य रूप से दयावीर का उदाहरण प्रस्तुत करता है। श्रृंगार और शान्त आदि रसों का उपयोग पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है। नाटककार का अभिप्रेत है कि एक निर्धन और निरीह पुरुष के बलिदान में त्याग की वह भावना जागरित नहीं होती है, जो एक तरुण युवक के बलिदान से जगती है, जोकि अपने राज्य के सुख, नवोढ़ा प्रिया और पिता आदि की सेवा को छोड़कर केवल निःस्वार्थ भाव से परोपकार के लिए आत्म-बलिदान करता है। त्याग और आत्मबलिदान की भावना को पुष्ट करने के लिए ही नायक के विवाह और श्रृंगार आदि की चर्चा —पृष्ठभूमि के रूप में—की गयी है।

यह नाटक हर्ष का अंतिम नाटक है। नागानन्द यद्यपि नाटकीय दृष्टि से रत्नावली से उत्कृष्ट नहीं है, तथापि इसमें भाव-सौन्दर्य, भाषा की प्रांजलता, सरलता, सरसता आदि गुणों के कारण यह महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्रो. स्मिथ ने नागानन्द को भारत के सर्वोच्च श्रेणी के नाटकों में अन्यतम माना है। इसमें आत्मबलिदान, दान, दया, त्याग, परोपकार और अहिंसा का प्रभावोत्पादक रूप में वर्णन किया गया है। हर्ष के अन्य दो नाटकों में श्रृंगार रस की प्रधानता है। किन्तु इसमें करुण रस-प्रभुता मानी गयी है। इसके पूर्वार्ध में जीमूतवाहन और मलयवती के विवाह में श्रृंगार रस प्रमुख है। जबकि उत्तरार्ध में आत्म-बलिदान की भावना मुख्य होने से दयावीर और करुण रस की मुखयता है। जैसा कि बताया जा चुका है, इसमें मुख्य रूप से वैदर्भी रीति का प्रयोग है। कहीं-कहीं पर गौड़ी रीति का भी दर्शन होता है। साथ ही इसमें प्रसाद, माधुर्य और ओज नाम के तीनों गुण प्राप्त होते हैं। नाटक में अधिकांश रूप में वैदर्भी रीति होने के कारण प्रसाद और माधुर्य गुण दृष्टिगोचर

होते हैं।

कवि ने चित्रित किया है कि जीवन की सफलता दान और परोपकार से है। वन में सभी गुण हैं। किन्तु याचकों के अभाव के कारण उसकी समृद्धि का सदुपयोग नहीं हो पाता है। अतः उनकी समृद्धि निरर्थक ही है। कवि ने प्रसाद गुण का आश्रय लेते हुए वन का वर्णन किया है कि—

> शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः
> शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः।
> इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने
> दुष्प्रापार्थिनि यत् परार्थघटनावन्ध्यैर्वृथा स्थीयते ।। नागा० 4.2

—"इस वन की घास वाली भूमि ही शय्या है। स्वच्छ शिलातल आसन है। वृक्षों के नीचे का स्थान ही घर है। पीने के लिए झरनों का ठण्डा पानी है। खाने के लिए कन्दमूल फल हैं। साथी मृग हैं। ये सभी आनन्द की वस्तुएँ बिना माँगे ही प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु यहाँ एक कमी है और वह यह कि यहाँ कोई याचक नहीं मिलता है, जिससे परोपकार न करने के कारण ये व्यर्थ हैं।"

मलयवती को जब यह ज्ञात होता है कि जीमूतवाहन ने उसके विवाह का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया है, तब वह आत्मघात-हेतु लता को गले में बाँध लेती हैं। चेटी के हल्ला मचाने पर जीमूतवाहन उसकी रक्षा के लिए उपस्थित होता है। कवि ने प्रसाद और माधुर्य-गुण-युक्त भाषा में इसका चित्रण करते हुए लिखा है कि—

> न खलु न खलु मुग्धे ! साहसं कार्यमीदृक्
> व्यपनय करमेतं पल्लवाभं लतायाः।
> कुसुममपि विचेतुं यो न मन्ये समर्थः
> कलयति स कथं ते पाशमुद्बन्धनाय ।। नागा० 2.11

—'हे भोली! ऐसे साहस का काम सर्वथा न करना। अपने इस पल्लव-तुल्य हाथ को लता से हटा लो। मैं नहीं समझता कि तुम्हारा हाथ जो फूल भी नहीं तोड़ सकता, वह किस प्रकार फाँसी लगाने के लिए अतिमुक्त लता को पकड़ रहा है।'

समुद्र में उठते हुए ज्वार-भाटा के वर्णन में कवि ने गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। ज्वार-भाटा का दृश्य कितना भयंकर है, इसका वर्णन कवि के शब्दों में है—

> उद्गर्जज्जलकुञ्जरेन्द्ररभसास्फालानुबन्धोद्धतः
> सर्वाः पर्वतकन्दरोदरभुवः कुर्वन् प्रतिध्वानिनीः।

उच्चैरुच्चरति ध्वनिः श्रुतिपथोन्माथी यथाऽयं तथा
प्रायः प्रेङ्खदसंख्यशङ्खवलया वेलेयमागच्छति ।। नागा० 4.3

—'ऊपर उठते हुए जल-गजों के लगातार किये गये सूँड़ों के जोर के थपेड़ों से उत्पन्न, पर्वतों की गुफाओं के सभी भीतरी भागों को गुँजाता हुआ तथा कानों के पर्दों को फाड़ता हुआ यह ऊँचा शब्द जैसे उठ रहा है, उससे ज्ञात होता है कि इधर-उधर उछलते हुए असंख्य शंखों को साथ लिये यह ज्वार-भाटा इधर ही आ रहा है ।'

कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है । वह भाव के अनुसार इस श्लोक में भी शैली-परिवर्तन कर देता है । एक ओर साँपों को खानेवाला गरुड़ है और दूसरी ओर रक्षा के लिए प्रवृत्त जीमूतवाहन है । कठोर के लिए कठोर भाषा का प्रयोग है और सरल के लिए सरल भाषा का । एक ही श्लोक में प्रसाद और ओज गुण के द्वारा वैदर्भी और गौड़ी रीति का मिश्रण प्राप्त होता है । शंखचूड दोनों का अन्तर करते हुए कहता है—

महाहिमस्तिष्कविभेदमुक्त रक्तच्छटाचर्चितचण्डचंचुः ।
क्वासौ गरुत्मान् क्व च नाम सोमसौम्यस्वभावरूपाकृतिरेष साधुः ।।
नागा० 4.13

—'कहाँ तो बड़े सर्पों के मस्तकों के भेदन से निकली हुई खून की धारा से लथपथ एवं भीषण चोंच वाला यह गरुड़ और कहाँ सौम्य स्वभाव और आकृति वाला यह सज्जन ।'

शृंगार रस के वर्णन में वैदर्भी रीति का आश्रय लिया गया है । नवोढ़ा प्रिया के वर्णन में कवि मधुर शब्दावली का प्रयोग करते हुए उसके हाव-भावों का सुन्दर वर्णन करता है । आँखें नीची करने पर भी, न बोलने पर भी और बाहर जाने की इच्छा करती हुई भी नायिका विशेष आनन्द प्रदान करती है—

दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता
शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते ।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते
जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया ।। नागा० 3.4

—'जब मैं देखता हूँ तो आँखें नीची कर लेती है । जब मैं बोलता हूँ तो बात नहीं करती । शय्या पर मुँह फेरकर लेटती है । जब मैं हठपूर्वक आलिंगन करता हूँ तो काँपने लगती है, कमरे से सखियों के बाहर जाने पर स्वयं भी बाहर जाना चाहती है । इस प्रकार नवविवाहिता प्रियतमा विपरीत कार्य करने पर भी मुझे अधिक आनन्द दे रही है ।'

कवि ने नारी के स्वाभाविक सौन्दर्य को वास्तविक सौन्दर्य माना है। आभूषण तो नारी के शरीर पर भारभूत मात्र हैं बोझ हैं। सुन्दरी स्त्री अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से ही सुशोभित होती है, न कि आभूषणों के द्वारा। अलंकारों से कवि ने आभूषणों के महत्त्व पर कठोर व्यंग्य किया है। जीमूतवाहन मलयवती को लक्ष्य में रखकर कहता है—

खेदाय स्तनभार एव किमु ते मध्यस्य हारोऽपरः
ताम्यत्यूरुयुगं नितम्बभरतः काञ्च्याऽनया किं पुनः।
शक्तिः पादयुगस्य नोरुयुगलं वोढुं कुतो नूपुरे
स्वाङ्गैरेव विभूषिताऽसि वहसि क्लेशाय किं मण्डनम्॥ नागा० 3.6

—'स्तनों का भार ही तुम्हारे कटि-भाग को थकाने के लिए जब पर्याप्त है, तब और हार के भार से क्या प्रयोजन ? नितम्बों के भार से तुम्हारी जंघाएँ थकी जा रही हैं, तब फिर इस करधनी से क्या लाभ ? पैरो में दोनों जंघाओं को ही वहन करने की शक्ति नहीं है, तब पुनः नूपुरों की भला क्या आवश्यकता ! तुम जब अपने ही अंगों से ही सुशोभित हो रही हो, तब केवल भार-वहन के लिए इन आभूषणों की क्या जरूरत है ?'

कवि ने तपोवन की सुन्दरता का वर्णन करते हुए प्रकृति के साथ तादात्म्य की भावना को पुष्ट किया है। वृक्ष भी सामान्य मनुष्य की तरह सुन्दर शब्दों में स्वागत करते हैं। अतिथि को नमस्कार करते हैं। और फल-फूल की वृष्टि कर अतिथि-सत्कार का भी पूरा काम करते हैं।

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै-
र्नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टीः किरन्तः
कथमतिथिसपर्यां शिक्षिताः शाखिनोऽपि॥ नागा० 1. 12

—'ये वृक्ष भ्रमरों के भंकार से मानो मधुर स्वागत कर रहे हैं, फलों से झुके हुए शिरों से मानो नमस्कार कर रहे हैं। पुष्पों की वर्षा करते हुए मानो मुझे पूजा का उपहार दे रहे हैं। देखो, किस तरह वृक्षों को भी अतिथि-सत्कार की शिक्षा दी गयी है।'

कवि ने जीवन की सफलता के कुछ लक्ष्यों का संकेत किया है। इन कार्यों को करके एक राजा स्वयं को कृतकृत्य समझ सकता है। जीमूतवाहन का पिता जीमूतकेतु अब जीवन से कृतकृत्य होकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। जीमूतकेतु का कथन है—

भुक्तानि यौवनसुखानि यशोऽवकीर्णं
राज्ये स्थितं स्थिरधिया चरितं तपोऽपि॥

श्लाघ्य: सुत: सुसदृशान्वयजा स्नुषेयं
चिन्त्यो मया ननु कृतार्थतयाऽद्य मृत्यु: ।।नागा० 5.3

—'मैंने यौवन के सुख भोग लिये हैं, यश फैला दिया है, स्थिर चित्त से राज्य कर लिया है। तपस्या भी कर चुका हूँ। पुत्र प्रशंसा का पात्र है। यह पुत्रवधू भी अपने सदृश कुल की मिल गयी है। अत: सफल मनोरथ हुए मुझे अब मृत्यु की ही चिन्ता करनी चाहिए।

कवि ने अपनी नीत-शास्त्रज्ञता का परिचय देते हुए एक ही श्लोक में राजा के कर्त्तव्यों का समग्र चिन्तन किया है। जीमूतवाहन का कथन है कि मैंने प्रजा को न्याय-मार्ग पर लगा दिया है। सज्जनों को सुखी किया है। बन्धुजनों को बराबरी का स्थान दिया है। राज्य की रक्षा की है। मनोरथ से अधिक फल देनेवाला कल्पवृक्ष भी याचकों को दे दिया है। अब मेरे लिए क्या कर्तव्य शेष रह गया है?

न्याय्ये वर्त्मनि योजिता: प्रकृतय: सन्त: सुखं स्थापिता
नीतौ बन्धुजनस्तथात्मसमतां राज्ये च रक्षा कृता।
दत्तो दत्तमनोरथाधिकफल: कल्पद्रुमोऽप्यर्थिने
किं कर्त्तव्यमत: परं कथय वा यत्ते स्थितं चेतसि ।।नागा० 1.8

कवि ने संगीतशास्त्र में निपुणता का भी सुन्दर परिचय दिया है। जीमूतवाहन संगीत की प्रशंसा करते हुए कहता है कि—

व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाऽधुना
विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधाऽयं लय: ।
गोपुच्छाप्रमुखा: क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि संपादिता:
तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधय: सम्यक् त्रयो दर्शिता: ।।नागा० 1.15

'इस गान में दस प्रकार के व्यंजन धातु स्पष्ट हैं। द्रुत, मध्य और विलम्बित—इन तीन प्रकार से भेद को प्राप्त हुआ यह लय अच्छी तरह स्पष्ट है। गोपुच्छ इत्यादि तीनों ही प्रकार की यतियाँ क्रमश: कर रखी हैं और तत्त्व, औघ और अनुगत—ये बजाने की तीनों विधियाँ अच्छे प्रकार से प्रदर्शित की गयी हैं।

इस श्लोक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का विवरण भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के अध्याय २७ में प्राप्त होता है।

नाटक में बौद्ध धर्म का सन्निवेश

कवि ने इस नाटक में बौद्ध धर्म के उपदेशों का यथास्थान सन्निवेश किया है शरीर की अनित्यता का निर्देश करते हुए कहा गया है कि मूर्ख जन इस शरीर के लिए क्या-क्या पाप नहीं करते—

सर्वाऽशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः।
शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ।।नागा० 4.7

—'यह शरीर नश्वर, कृतघ्न और अपवित्र मांस-मूत्रादि का निधान है। इस तुच्छ शरीर के लिए मूर्ख पाप करते हैं।'

गीता के तुल्य इसमें भी उपदेश दिया गया है कि जन्म के साथ ही अनित्यता मनुष्य को अपनी गोद में ले लेती है। अतः मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं है :

क्रोडीकरोति प्रथमं यदा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात् तदा शोकस्य कः क्रमः ? नागा० 4.8

—'मानवजीवन की सफलता परोपकार के लिए अपना शरीर देने में है, न कि राज्य के लिए प्राणियों का वध करना।'

स्वशरीरमपि परार्थे यः खलु दद्यादयाचितः कृपया ।
राज्यस्य कृते स कथं प्राणिबधक्रौर्यमनुमनुते ।।नागा० 3.17

—'जो बिना माँगे हुए भी दया के कारण परोपकार के लिए अपने शरीर को भी दे सकता है, वह जीमूतवाहन राज्य के लिए प्राणिवध रूपी क्रूरता की अनुमति कैसे दे सकता है ?'

जीमूतवाहन गरुड़ के अपराधों को क्षमा करते हुए उसे उपदेश देता है कि प्रायश्चित्त करो और सभी प्राणियों को अभय दान देकर पुण्य अर्जित करो। तभी तुम्हारे पाप घुल सकेंगे। यह सुन्दर उपदेश देते हुए जीमूतवाहन गरुड़ से कहता है :

नित्यं प्राणाभिघातात् प्रतिविरम कुरु प्राक्कृते चानुतापं
यत्नात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम् ।
मग्नं येनात्र नैनः फलति परिमितं प्राणिहिंसात्तमेतद्
दुर्गाधापारवारेर्लवणपलमिव क्षिप्तमन्तर्ह्रदस्य ।।नागा० 5.२५

—'प्राणि-हिंसा को सदा के लिए बन्द कर दो। पहले किये हुए हिंसा-कार्यों का प्रायश्चित्त करो और सभी प्राणियों को अभयदान देते हुए यत्न-पूर्वक पुण्य का प्रवाह संचित करो। प्राणियों की हिंसा से उत्पन्न, फलोन्मुख तुम्हारा पाप इसमें डूबकर इस प्रकार न फले, जिस प्रकार झील के अगाध जल में डाला हुआ पल-भर नमक।'

हर्ष ने नागानन्द में करुण रस की सुन्दर सृष्टि की है। जीमूतवाहन मरणासन्न है। वह अपने पिता को अन्तिम प्रणाम करते हुए जीवन की अन्तिम दशा का वर्णन करता है :

गात्राण्यमूनि न वहन्ति विचेतनानि
श्रोत्रं स्फुटाक्षरपदा न गिरः शृणोति ।

कष्टं निमीलितमिदं सहसैव चक्षुः
हा तात ! यान्ति विवशस्य ममासवोऽपि ।। नागा० 5.30

—'मेरे हाथ पैर आदि अंगों में चेतना नहीं रह गयी है। कान स्पष्ट अक्षर और ओज-पूर्ण वाणी को नहीं सुन रहा है। खेद है कि यह आँख भी सहसा बन्द हो रही है। हा पिता जी, विवश हुए मेरे यह प्राण अब जा रहे हैं।'

पुत्र के इस अन्तिम प्रणाम से जीमूतवाहन के पिता जीमूतकेतु का हृदय उद्विग्न हो जाता है और वह कहता है कि आज संसार मेरे लिए शून्य हो गया है और मेरा कोई आधार नहीं रह गया है।

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः
क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह विरता दानपरता ।
हृतं सत्यं सत्यं व्रजतु कृपणा क्वाद्य करुणा
जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय ! लोकान्तरगते ।। नागा० 5.31

—'हे पुत्र ! तुम्हारे परलोक जाने से धैर्य निराधार हो गया है। नम्रता अब किसकी शरण में जाएगी ? कौन इस संसार में क्षमा रख सकेगा ? उदारता भी समाप्त हो गयी है ? सत्य वस्तुतः नष्ट हो गया है। बेचारी करुणा अब कहाँ जाए ? तेरे बिना अब संसार सूना हो गया है।'

नायक जीमूतवाहन स्थान-स्थान पर परोपकार की भावना का उद्घोष करता है। वह कहता है कि यदि इस असहाय की मैं रक्षा नहीं करता हूँ तो मेरे शरीर का क्या लाभ ?

आर्तंकण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबन्धुभिः ।
त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः ।। नागा० 4.11

जीमूतवाहन को संतोष है कि उसने अपना शरीर देकर एक साँप की रक्षा की है और पुण्य कमाया है। उसकी कामना है कि वह परोपकार के लिए ही बार-बार जन्म ले।

संरक्षता पन्नगमद्य पुण्यं मयार्जितं यत्स्वशरीरदानात् ।
भवे भवे तेन ममैवमेव भूयात् परार्थः खलु देहलाभः ।। नागा० 4.26

कवि ने मातृ-स्नेह का बहुत ही सुकुमार शब्दों में वर्णन किया है। माँ का प्रेम कभी भुलाया नहीं जा सकता है। मृत्यु के समय भी माँ की गोद में मरना सुखद प्रतीत होता है। शंखचूड गरुड के लिए अपने आपको समर्पण करने से पूर्व अपनी माता से कहता है कि :

समुत्पत्स्यामहे मातर्यस्यां यस्यां गतौ वयम् ।
तस्यां तस्यां प्रियसुते माता भूयास्त्वमेव नः ।। नागा० 4.20

—'हे पुत्र-वत्सल माता ! जिस-जिस योनि में मैं जन्म ग्रहण करूँ, उस-उस योनि में तुम्हीं मेरी माता रहना।'

नायक जीमूतवाहन शंखचूड की माता से कहता है कि यदि अपने पुत्र की रक्षा करना चाहती हो तो मेरे जीवन-दान से अपने पुत्र की रक्षा करो।

म्रियते म्रियमाणे या त्वयि जीवति जीवति।
तां यदीच्छसि जीवन्तीं रक्षात्मानं ममासुभिः ।। नागा० 4.17

—'जो तुम्हारे मरने पर मर जाएगी और तुम्हारे जीवित रहने पर जीवित रहेगी, उस माँ को यदि तुम जीवित रखना चाहते हो तो मेरे प्राण-दान से अपने आपको बचा लो।'

नायक जीमूतवाहन माता की गोद में मरने की अपेक्षा परोपकार के लिए बध्य-शिला पर अपने प्राणों को देने में अधिक सुख अनुभव करता है। आत्मोत्सर्ग की यह भावना उसकी उदात्तता की परिचायक है।

शयितेन मातुरङ्के विस्रब्धं शैशवे न तत् प्राप्तम्।
लब्धं सुखं मयाऽस्या बध्यशिलाया यदुत्सङ्गे ।। नागा० 4.24

—'बचपन में माता की गोद में निश्शंक लेटे हुए मुझे वह सुख नहीं मिला, जो बध्य-शिला की गोद में पड़े हुए आज मुझे प्राप्त हो रहा है।'

इस प्रकार ज्ञात होता है कि हर्ष विविध रसों के वर्णन में अति निपुण हैं। भावों के अनुसार उसकी भाषा में रीति-परिवर्तन है। उसकी वर्णन-कुशलता अनुपम है। सुकुमार भावों के वर्णन में और मनोवैज्ञानिक चित्रण में असाधारण पटु है। प्रयत्न-साध्य अलंकारों का प्रयत्न न करके स्वाभाविक रूप से शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग किया है।

छन्द-विन्यास—छन्द-विन्यास की दृष्टि से नागानन्द श्रीहर्ष के नाटकों में सर्वोत्कृष्ट है। इसमें छन्दों का प्रौढ़ रूप दृष्टिगोचर होता है। 'नागानन्द' में ग्यारह छन्दों का प्रयोग हुआ है। ये हैं—शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, आर्या, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, श्लोक, शालिनी, हरिणी और द्रुतविलम्बित। प्रमुख छन्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है, शार्दूल०—30, स्रग्धरा—17, श्लोक—24, आर्या—16। इससे यह भी ज्ञात होता है कि छन्द-योजना में प्रौढ़ता के कारण नागानन्द श्रीहर्ष की अन्तिम कृति है।

रत्नावली : संक्षिप्त कथा और मूल स्रोत

प्रथम अंक

प्रस्तावना में सूत्रधार कवि श्रीहर्ष देव नाटिका के प्रतिपाद्य विषय उदयन और रत्नावली के प्रेम का संकेत करते हैं। मंत्री यौगन्धरायण प्रवेश करता है। उदयन एक प्रतापी, लोक-रंजक एवं मृदु स्वभाववाला राजा है। अवन्ति के राजा उद्योत की राजकुमारी वासवदत्ता उसकी पटरानी है। उदयन का मंत्री यौगन्धरायण अपने स्वामी का विवाह सिंहल की राजकुमारी रत्नावली के साथ कराना चाहता है। क्योंकि एक सिद्ध पुरुष ने रत्नावली को देखकर कहा था कि जो इस कन्या के साथ विवाह करेगा, वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा। यौगन्धरायण रत्नावली को उदयन के हेतु माँगने के लिए सिंहल देश जाता है। परन्तु उदयन की प्रथम पत्नी अपनी बहन वासवदत्ता के होते हुए रत्नावली को उसकी सपत्नी का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है। यौगन्धरायण लावाणक ग्राम में वासवदत्ता के जलकर मर जाने का समाचार प्रसारित कर बाभ्रव्य को सिंहलराज के पास रत्नावली की माँग के लिए भेजता है।

सिंहलराज रत्नावली को अपने कंचुकी और मंत्री के साथ कौशाम्बी भेजते हैं। मार्ग में नाव के डूब जाने के कारण रत्नावली और उसके संरक्षकों का साथ छूट जाता है। काष्ठफलक की सहायता से रत्नावली बच जाती है। संयोगवश कौशाम्बी के व्यापारियों का जलयान उधर से आ रहा था, जिसके द्वारा रत्नावली की प्राण-रक्षा होती है। व्यापारी रत्नावली को अपने साथ कौशाम्बी ले आते हैं और यौगन्धरायण को भेंट करते हैं। यौगन्धरायण सागर से प्राप्त होने के कारण उसका नाम सागरिका रखकर परिचारिका के रूप में राजा के अन्तःपुर में वासवदत्ता की परिचर्या में रख देता है।

कौशाम्बी में वसन्तोत्सव मनाया जा रहा है। सभी नागरिक वसन्त का उत्सव मनाने में मग्न हैं। राजा उदयन कहते हैं कि यह महान् उत्सव मेरा है। अबीर, गुलाल आदि रंग इतनी मात्रा में उड़ाये गये हैं कि पूरा नगर और दसों दिशाओं के मुख लाल-पीले हो रहे हैं। महादेवी वासवदत्ता ने मकरन्दोद्यान में अशोक वृक्ष

के नीचे कन्दर्प-पूजन का आयोजन किया है। तैयारी पूर्ण हो जाने पर वासवदत्ता उदयन को पूजन में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित करती है। राजा विदूषक के साथ वहाँ पहुँचता है। रानी भी परिचारिकाओं के साथ वहाँ पहुँचती हैं। परिचारिकाओं में सागरिका को देखकर रानी उसे सारिका की देख-रेख करने के लिए तुरन्त चले जाने का आदेश देती हैं। वे सागरिका को राजा के समक्ष नहीं आने देना चाहती हैं। परन्तु सागरिका को कौशाम्बी में कन्दर्प-पूजन देखने की अभिलाषा थी। अतः वह लताकुंज में छिपकर कन्दर्प-पूजन देखती है। रानी द्वारा पूजे जाते हुए राजा उदयन को देखकर उसे भ्रान्ति हो जाती है कि मानो साक्षात् कामदेव ही पूजा को स्वीकार कर रहा है। वह भी कुछ फूल चुनकर कन्दर्प को उद्देश्य करके चढ़ा देती है तथा अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए प्रार्थना करती है। वैतालिका द्वारा पढ़ी गई स्तुति से सागरिका को यह ज्ञात हो जाता है कि यह वही राजा उदयन हैं, जिनके लिए उसके पिता ने उसे दिया था। वत्सराज उदयन के प्रथम दर्शन से ही वह उनपर आसक्त हो जाती है।

द्वितीय अंक

सागरिका वत्सराज उदयन पर प्रथम दर्शन से ही आसक्त है। वह कदली-कुंज में जाकर आत्म-विनोदार्थ कामदेव के रूप में राजा के चित्र को चित्रित करती है। उसी समय उसकी सखी सुसंगता वहाँ पहुँच जाती है और उससे पूछती है कि यह चित्र किसका है? सागरिका कहती है कि मैंने मदनोत्सव के अवसर पर कामदेव का चित्र बनाया है। सुसंगता रहस्य की बात समझकर चित्रफलक पर राजा के साथ रति के रूप में सागरिका का चित्र बना देती है। इसपर सागरिका सुसंगता पर रुष्ट होती है। परन्तु सुसंगता के आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर वह अपनी सारी व्यथा बता देती है। सागरिका और सुसंगता के वार्तालाप को मेधाविनी सारिका सुन लेती है।

इसी समय राजा का पालतू बन्दर उस ओर आता है, जहाँ सागरिका सुसंगता और सारिका बैठी हैं। दोनों सखियाँ बन्दर के डर से सारिका के पिंजरे तथा चित्र-फलक को छोड़कर तमाल वृक्षों में छिप जाती हैं। बन्दर सारिका का पिंजरा खोल देता है। सारिका उड़ जाती है। सागरिका और सुसंगता सारिका का पीछा करती हैं। सारिका मौलिश्री के वृक्ष पर बैठकर दोनों सखियों के बीच हुए वार्तालाप को दोहराने लगती है।

इसी बीच राजा और विदूषक धर्मात्मा श्रीखण्डदास से सीखे हुए दोहद के प्रभाव से अकाल-पुष्पित नवमालिका को देखने मकरन्द-उद्यान में जाते हैं। मार्ग में राजा और विदूषक सागरिका और सुसंगता के बीच हुए वार्तालाप को सुनकर

सारिका का पीछा करते हुए कदली वन पहुँच जाते हैं। दोनों वहाँ चित्रफलक को देखकर तथा सागरिका की कामदशा को सूचित करनेवाले कमलिनी-पत्रों आदि को देखकर आपस में बातें करते हैं। इसी बीच सागरिका और सुसंगता चित्रफलक लेने के लिए कदली वन पहुँचती हैं। राजा और विदूषक को देखकर दोनों कदली की झाड़ी में छिपकर राजा और विदूषक का वार्तालाप सुनती हैं। सुसंगता राजा के सामने उपस्थित होकर सागरिका की मनोदशा से अवगत करा देती है और चतुरता से राजा से सागरिका का मिलन करा देती है। सुसंगता की वाचालता से सागरिका कुपित हो जाती है। राजा उसे मनाने के लिए उसका हाथ पकड़ लेता है। विदूषक कुपित सागरिका को दूसरी वासवदत्ता कहता है। वासवदत्ता का नाम सुनकर राजा घबराकर सागरिका का हाथ छोड़ देता है। सुसंगता और सागरिका दोनों तमाल वृक्ष की ओट लेकर चली जाती हैं। अकाल-पुष्पित नव-मालिका को देखने के लिए वासवदत्ता भी वहाँ पहुँच जाती हैं। वासवदत्ता को देखकर विदूषक चित्रफलक को चादर में लपेटकर छिपा लेता है, परन्तु उसकी असावधानी से चित्रफलक भूमि पर गिर जाता है। कांचनमाला चित्रफलक उठा-कर वासवदत्ता को दिखाती है। वासवदत्ता चित्रफलक को देखकर क्षुब्ध हो जाती हैं। राजा उसे मनाने का प्रयास करता है। परन्तु वह सिरदर्द का बहाना कर वहाँ से चली जाती हैं। राजा उसे मनाने के लिए विदूषक के साथ अन्तःपुर चला जाता है।

तृतीय अंक

राजा काम-पीड़ा से अस्वस्थ है। दिन-रात उसे सागरिका की चिन्ता सताने लगी है। राजा की मनोदशा और वेदना को देखकर विदूषक वसन्तक सुसंगता से मिलकर राजा और सागरिका के मिलन की योजना बनाता है। इस योजना के अनुसार सुसंगता कांचनमाला के वेश में और सागरिका वासवदत्ता के वेश में सायंकाल माधवीलता-मण्डप में पहुँचेंगी। वहीं राजा से सागरिका का मिलन करा दिया जाएगा। योजना के अनुसार राजा और विदूषक माधवीलता-मण्डप पहुँच जाते हैं। कांचनमाला को विदूषक से इस योजना का पता चल जाता है। वासव-दत्ता को भी इस योजना का पता चल जाता है। वह कांचनलता को साथ लेकर संकेत-स्थल पर पहुँच जाती हैं। कामातुर राजा वेश-साम्य से धोखा खा जाता है। सागरिका आयी है, यह समझकर राजा अपने प्रेमोद्गार प्रकट करने लगता है। वासवदत्ता कुछ देर तो सुनती रहती है, किन्तु जब उसे राजा की धृष्टता असह्य हो जाती है, तब वह अपना घूंघट हटा देती है। राजा का संभ्रम दूर होता है। वह वासवदत्ता को मनाने के लिए उसके पैरों पर गिर पड़ता है, किन्तु वह

वहाँ से चली जाती है।

सागरिका वासवदत्ता के वेश में मकरन्द-उद्यान में पहुँचती है। राजा से एकान्त में मिलने की योजना का ज्ञान वासवदत्ता को होने और वासवदत्ता के कुपित होकर चले जाने का समाचार जानकर वह बहुत दु:खी होती है और माधवीलता की फाँसी बनाकर अशोक वृक्ष से लटककर आत्महत्या करना चाहती है। विदूषक उसे देख लेता है और वासदत्ता समझकर राजा को उसकी प्राण-रक्षा के लिए पुकारता है। राजा लतापाश गले से हटाकर आत्महत्या से रोकता है। राजा जब वासवदत्ता के वेश में सागरिका को देखता है तो वह अपने प्रेमोद्‌गार प्रकट करने लगता है। दूसरी ओर वासवदत्ता के मन में इस बात का पश्चात्ताप होता है कि राजा द्वारा मनाने पर भी वह नहीं मानी। अत: वह स्वयं राजा को मनाने के लिए मकरन्द-उद्यान पहुँचती हैं। किन्तु वहाँ राजा और सागरिका के बीच हो रहे प्रेमालाप को सुनकर क्रोधित हो जाती हैं। इस कार्य में विदूषक का हाथ समझकर उसे वहाँ पड़ी माधवी लता से बँधवा देती हैं और सागरिका को बन्दी बनाकर ले जाती हैं। राजा भी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए उनके पीछे अन्त:पुर को जाता है।

चतुर्थ अंक

राजा के अनुनय-विनय करने पर वासवदत्ता विदूषक को उपहार देकर छोड़ देती हैं। इधर सागरिका को किसी अज्ञात स्थान पर बन्दी बनाकर यह अफ़वाह फैला देती हैं कि सागरिका को उज्जयिनी भेज दिया गया। इससे पूर्व सागरिका अपने जीवन से निराश हो जाती है और अपने पिता द्वारा दी गयी रत्नमाला को सुसंगता को दे देती है और उसे किसी ब्राह्मण को दे देने को कहती है। सखी के दु:ख में दु:खी सुसंगता रत्नमाला लेकर रंगमंच पर उपस्थित होती है और किसी ब्राह्मण को ढूंढ़ने लगती है। इसी बीच विदूषक उसे दिखायी पड़ता है। वह विदूषक से कहती है कि जीवन से निराश सागरिका ने यह रत्नमाला मेरे हाथ में देते हुए यह कहा था कि यह रत्नमाला आर्य वसन्तक के हाथ में दे देना। अत: आप इसे ग्रहण करें। विदूषक यह सोचकर माला ग्रहण कर लेता है कि इससे अपने मित्र राजा का मन बहलाऊँगा। विदूषक रत्नमाला को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाता है और कहता है कि इस दुर्लभ आभूषण से निश्चय ही यह ज्ञात होता है कि सागरिका किसी उच्च कुल में उत्पन्न हुई होगी। वह माला लेकर राजा के पास जाता है और सागरिका को उज्जयिनी भेजे जाने की ख़बर के साथ वह रत्नमाला राजा को सौंप देता है। राजा विरह-संताप में जलने लगता है।

इसी समय प्रधान सेनापति रुमण्वान् का भागिनेय विजयवर्मा उपस्थित होता है और राजा को कोसल-विजय से अवगत कराता है।

राजा विजय-अभियान के बारे में विस्तार से सुनता है और विजयवर्मा को पारितोषिक प्राप्त करने के लिए यौगन्धरायण के पास भेजता है। इसी बीच ऐन्द्रजालिक आता है। वह अपने आप को उज्जयिनी-निवासी बताता हुआ बहुत आत्म-प्रशंसा करता है। उदयन उसे खेल दिखाने की स्वीकृति प्रदान करता है और वासवदत्ता को भी खेल देखने के लिए बुला लेता है। ऐन्द्रजालिक अपने खेल का प्रदर्शन करता है। आकाश में देवी-देवता दिखायी पड़ते हैं। दिन में ही चन्द्र दर्शन होता है। इसी बीच अमात्य वसुभूति और कचुकी राजा से मिलने आते हैं। राजा ऐन्द्रजालिक को तब तक विश्राम करने के लिए कहता है। ऐन्द्रजालिक राजा से एक खेल अवश्य देखने की प्रार्थना कर बाहर चला जाता है।

इधर जब वसुभूति रत्नावली के समुद्र में डूब जाने की कथा सुना रहा था, तभी अन्तःपुर में भयंकर आग लगने का कोलाहल होता है। आग की लपटें चारों ओर फैलने लगती हैं। धुएँ से सबका दम घुटने लगता है। वासवदत्ता द्वारा राजा से सागरिका को बचाने के लिए प्रार्थना करने पर राजा आग में कूद पड़ता है और उसके साथ सारा राज-परिवार ही कूद पड़ता है। राजा और सागरिका का अग्नि में मिलन होता है। माया-निर्मित अग्नि शान्त हो जाती है। कंचुकी ब्राभव्य और मंत्री वसुभूति सागरिका की आकृति रत्नावली से मिलती-जुलती देखकर राजा और वासवदत्ता से उसके बारे में पूछते हैं। अन्त में सागरिका पहचान ली जाती है। वह और कोई नहीं, सिंहलनरेश-पुत्री राजकुमारी रत्नावली है।

इसी बीच मंत्री यौगन्धरायण भी वहाँ आ जाता है। वह अपनी पूरी योजना बताकर राजा से बिना पूछे ऐसी योजना बनाने के लिए क्षमा माँगता है। वासवदत्ता ने अपनी बहन को पहचान लेने के कारण—उसे जो दुःख दिया है—उसका उसे क्षोभ होता है। वह अपनी बहन रत्नावली को गले लगा लेती है तथा अपने आभूषणों से अलंकृत कर राजा को उसका हाथ पकड़ाते हुए निवेदन करती है कि रत्नावली के साथ ऐसा व्यवहार कीजिए कि वह अपने दूरस्थ बांधवों को भूली रहे। राजा रत्नावली को सहर्ष स्वीकार करता है।

रत्नावली की कथा का मूल-स्रोत

'रत्नावली' नाटिका की कथा का मूल गुणाढ्यकी बृहत्कथा (बड्ढकहा) है बृहत्कथा के रूपान्तर सोमदेव के कथासरित्सागर से नाटिका का कथानक मिलता-जुलता है। साथ ही भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' का भी इसकी रचना पर प्रभाव है।

कथासरित्सागर में उदयन की कथा इस प्रकार है—

उदयन चन्द्रवंशीय अर्जुन के वंशज शतनीक के पुत्र कौशाम्बी-पति सहस्रानीक

से उत्पन्न हुआ था। जब वह अपनी माता मृगावती के गर्भ में था, तब रानी ने शापवश रुधिर में स्नान करने की इच्छा राजा से दोहद के रूप में प्रकट की। राजा ने लाक्षारस के तालाब में उसके स्नान का प्रबन्ध कर दिया। रानी जब उस तालाब में नहा रही थीं, तब एक गिद्ध रानी को मांस-पिण्ड समझकर उठा ले गया और उदय पर्वत पर जमदग्नि मुनि के आश्रम के पास रखकर कहीं चला गया। मुनि के आश्रम में रानी ने उदयन को जन्म दिया। बालक का वहीं पालन-पोषण होने लगा। उदयन धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। एक दिन उदयन ने व्याध के हाथ एक दुर्दशाग्रस्त सुन्दर सर्प को देखा। दयावश उदयन ने व्याध को अपना सोने का कड़ा देकर व्याध से सर्प को छुड़ा दिया। वह सर्प वासुकी का बड़ा भाई वसुनेमि था, जो शाप के कारण इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ था। उसने प्रसन्न होकर उदयन को एक वीणा दी और कई मंत्र भी प्रदान किये।

व्याध उस कड़े को लेकर बेचने के लिए कौशाम्बी गया। उस कड़े पर राजा का नाम खुदा देखकर लोगों ने उसे पकड़ लिया और राजसभा में राजा के समक्ष उपस्थित किया। व्याध ने कड़ा-प्राप्ति की घटना को सुनाया। राजा सहस्रानीक ने अपने स्त्री-पुत्र को प्राप्त करने के लिए सेना लेकर प्रस्थान किया। जमदग्नि के आश्रम में रानी और पुत्र दोनों प्राप्त हुए। राजकुमार को राजधानी लाकर युवराज बना दिया और उसके परामर्श के लिए अपने मंत्रियों के पुत्र यौगन्धरायण, रुमण्वान् और वसन्तक को नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों बाद, राजा पुत्र को राज्यभार सौंपकर तपस्या के लिए हिमालय चले गये।

उदयन को शिकार करने का व्यसन हो गया। वह अपना राज्य-भार मन्त्रियों पर डालकर वसुनेमि की दी हुई घोषवती नाम की वीणा बजाने लगा तथा उससे जंगली हाथियों को वश में करने की क्रिया करने लगा। उज्जयिनी का राजा चण्डमहासेन उदयन से अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह करना चाहता था। उदयन के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर वासवदत्ता भी उदयन पर मोहित थी। परन्तु दोनों राज्यों की पुरानी शत्रुता इस सम्बन्ध में बाधक थी। अतः उज्जयिनी-नरेश ने युक्ति से काम निकालना चाहा। उसे यह पता चला कि उदयन वीणा के द्वारा हाथियों को वश में करने की क्रिया कर रहा है। उसने यन्त्र-गज बनवाकर उसके अन्दर कुछ चुने हुए सैनिकों को बैठा दिया और विन्ध्य अरण्य में छोड़ दिया। मृगया-प्रेमी उदयन उसको वास्तविक गज समझकर उसको अपने वश में करने के लिए उसका पीछा करने लगा। वीणा बजाता हुआ वह यन्त्र-गज के पीछे बहुत दूर चला गया। यन्त्र-गज में बैठे हुए सैनिकों ने जब यह देखा कि उदयन इस समय अकेला है और वह अपने साथियों से बहुत दूर है, तब वे बाहर निकल आये और उदयन को बन्दी बना लिया। उदयन को बन्दी बनाकर वे उज्जयिनी ले गये। किन्तु उज्जयिनी के राजा चण्डमहासेन ने उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार

किया। उसे उन्होंने अपनी पुत्री राजकुमारी वासवदत्ता को गान्धर्व शिक्षा देने के लिए कहा। शीघ्र ही वासवदत्ता और उदयन प्रेम-सूत्र में बँध गये।

यौगन्धरायण और रुमण्वान् आदि को जब पता चला कि उनके राजा को बन्दी बनाकर उज्जयिनी ले जाया गया है, तो युक्ति से ही काम लेना ठीक समझा। यौगन्धरायण वसन्तक को साथ लेकर उज्जयिनी गया। वहाँ ब्रह्मराक्षस से सीखे हुए मंत्र के प्रभाव से उसने वसंतक को विकलांग बना दिया और स्वयं पागल बन गया। इस प्रकार दोनों अन्तःपुर में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर पागल वेशधारी यौगन्धराण ने उदयन को अपना परिचय दिया और उससे विचार-विमर्श किया। वसन्तक उदयन और वासवदत्ता के मनोविनोद के लिए वहीं रुक गया।

वासवदत्ता और उदयन के बीच धीरे-धीरे प्रेम और प्रगाढ़ हो गया। वासव-दत्ता उदयन के साथ भागने के लिए तैयार हो गयी। यौगन्धरायण ने उदयन और वासवदत्ता के निकल भागने की योजना बनायी और दोनों को इस योजना से अवगत कराया।

यौगन्धरायण की योजना के अनुसार उदयन वासवदत्ता और साथ में उसकी प्रिय सहचरी कांचनमाला और वसन्तक को लेकर भद्रवती नामक हथिनी पर सवार होकर चुपके से भाग निकला। जब इस समाचार का चण्डमहासेन के पुत्र पालक को पता चला, तब वह नलगिरि नामक हाथी पर सवार होकर उदयन का पीछा करने निकला। किन्तु नलगिरि ने अपनी प्रिया भद्रावती पर प्रहार नहीं किया। चण्डसेन का द्वितीय पुत्र गोपालक अपने भाई को समझा-बुझाकर वापस लौटा लाया। इसके वाद चण्डमहासेन ने गोपालक को कौशाम्बी जाकर वासवदत्ता के विवाह की विधि को पूर्ण करने का आदेश दिया। गोपालक ने वासवदत्ता का उदयन के साथ विधिवत् विवाह-संस्कार पूरा कराया।

इधर गोपालक ने बंधुमती नाम की राजकुमारी को मंजुलिका नाम से वासवदत्ता के पास गुप्त रूप से भेज दिया। उदयन उस परमसुन्दरी मंजुलिका को देखकर उस पर आसक्त हो गया। राजा के मित्र वसन्तक ने उद्यान में दोनों का मिलन कराया। राजा ने मंजुलिका के साथ लताकुंज में गान्धर्व विवाह कर लिया। जब इस घटना का ज्ञान रानी वासवदत्ता को हुआ तो उन्होंने क्रोध में आकर मंजु-लिका और वसन्तक दोनों को अन्तःपुर के कारागार में वन्द कर दिया। वासवदत्ता के मायके से आयी हुई वृद्धा संन्यासिनी सांकृत्यायनी को राजा ने इस घटना से अवगत कराया। सांकृत्यायनी के कहने पर रानी वसन्तक और मंजुलिका को कारा वास से मुक्त कर उसका हाथ स्वयं राजा को सौंप दिया।

भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' का भी प्रभाव रत्नावली पर साथ दिखायी पड़ता है। दोनों की भाषा और विचार समान हैं। कई वाक्यों में दोनों नाटकों में समानता मिलती है। जैसे—'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में यौगन्धरायण से उदयन

पूछता है कि—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ।' इसी प्रकार उदयन रत्नावली में यौगन्धरायण से पूछता है—'अथ इयं देवी हस्ते किमनुचिन्त्य स्थापिता'। स्वप्नवासवदत्तम् में राजा के विवाह के बाद यौगन्धरायण क्षमा माँगता हुआ कहता है—'देव्यापनयेन कृतापराधः खल्वहम्, तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी !' रत्नावली में वह राजा से कहता है—'देव, क्षम्यतां यन्मया देवस्यानिवेद्य कृतम् ।' इस प्रकार दोनों वाक्यों के विचारों में पर्याप्त समानता दिखायी पड़ती है। 'स्वप्न वासवदत्तम्' में यौगन्धरायण अपनी योजना में सफल होने के बाद भी राजा से भयभीत रहता है(प्रच्छाद्य राजमहिषीम्०, स्वप्न० 6.15)। रत्नावली में भी वह सफल होता हुआ राजा से डरा हुआ है (प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतो; रत्नावली 1.7)। उक्त साम्यों के आधार पर ही काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने रत्नावली के साथ प्रियदर्शिका और नागानन्द को भी भास की रचना कहा है—

(आदौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका।···तस्य रत्नावली नूनं रत्नमालेव राजते। काव्यमीमांसा)

रत्नावली पर कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'मालविकाग्निमित्र' की और 'रत्नावली' की नायिकाएँ मालविका और सागरिका दोनों से महारानी ईर्ष्या करती हैं। किन्तु दोनों अन्त में एक प्रकार से मुक्त होती हैं। महारानी स्वयं दोनों का विवाह राजा से करा देती हैं।

नाटिका के रूप में रत्नावली

'रत्नावली' की गणना रूपकों के उपभेद नाटिका में की जाती है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों—भरत, धनंजय आदि के लक्षणों का समन्वय करते हुए नाटिका का लक्षण दिया है :

> नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।
> प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥
> स्यादन्तःपुरसंबद्धा संगीतव्यापृताथवा ।
> नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ॥
> संप्रवर्तेत नैतस्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ।
> देवी भवेत् पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥
> पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः ।
> वृत्तिः स्यात् कैशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ॥

(सा० द०, पृ०269-272)

अर्थात् नाटिका का कथानक काल्पनिक होता है। इसमें स्त्री-पात्र अधिक होते हैं। इसकी कथा चार अंकों में विभक्त होती है। इसका नायक प्रसिद्ध धीर ललित राजा होता है। नायिका राजकुमारी होती है। वह अन्तःपुर से संबद्ध या संगीतादि में संलग्न नवोदित प्रेम से युक्त होती है। नायक महारानी से सशंक रहते हुए प्रेम-व्यापार में प्रवृत्त होता है। महादेवी राजकुलोत्पन्न प्रगल्भा ज्येष्ठा नायिका होती है। जो पद-पद पर मान करनेवाली होती है। महारानी ही नायक और नायिका दोनों का विवाह कराती हैं। इसमें कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है। इसमें संधियाँ भी होती हैं। इनमें विमर्श सन्धि स्वल्प होती है।

नाटिका के सभी लक्षण 'रत्नावली' में प्राप्त होते हैं। नाटिका की कथा कवि-कल्पित होती है। 'रत्नावली' की कथा भी कवि-कल्पित ही है। नाटिका के लक्षण के अनुरूप ही 'रत्नावली' की कथा चार अंकों में विभक्त है। इसमें स्त्री-पात्रों की प्रधानता है। वासवदत्ता, रत्नावली, सुसंगता, कांचनमाला, वसुन्धरा, निपुणिका आदि स्त्री-पात्राएँ हैं। इसका नायक भी 'धीर ललित' है। नायक निश्चित, मृदु और कलापरायण हैं।

नाटिका के लक्षणों के अनुसार नाटिका का केन्द्र अन्तःपुर से सम्बद्ध होता है। इसकी नायिका राजकुलोत्पन्न होती है। 'रत्नावली' की कथा का केन्द्र भी अन्तःपुर ही है। इसकी नायिका महारानी की बहन रत्नावली है। वह ललित कलाओं में निपुण और भावुक तथा अनुरागवती कन्या है। वह राजा उदयन को प्रथम दर्शन में ही कामदेव को साक्षात् समझकर, अपना हृदय अर्पित कर देती है। नायक उदयन यद्यपि नाटिका के लक्षणों के अनुरूप महादेवी से अपने प्रेम की सफलता के प्रति सशंकित रहता है, तथापि वह प्रेम-व्यापार की ओर प्रवृत्त रहता है। महादेवी वासवदत्ता राजकुलोत्पन्न प्रगल्भा ज्येष्ठा नायिका है। वह पद-पद पर राजा से मान करती है। नायक उदयन और नायिका रत्नावली का मिलन भी उसी के अधीन है। वह स्वयं दोनों का विवाह कराती है।

नाटिका के लक्षणों के अनुरूप ही 'रत्नावली' का प्रधान रस श्रृंगार है। इसमें विप्रलम्भ का भी वर्णन है, परन्तु वह सम्भोग श्रृंगार का पोषक है। इसके अतिरिक्त हास्य रस का वर्णन विदूषक की उक्तियों में, वीर रस का वर्णन संग्राम आदि के वर्णन में तथा भयानक रस का वर्णन बन्दर के खुल जाने पर प्राप्त होता है। नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है। कैशिकी वृत्ति में कोमलता, मृदुता और पेशल परिहास होता है। अतः इसका अभिनय स्त्री-पात्रों द्वारा ही संभव है। इसका प्रयोग श्रृंगार और हास्य रसों के प्रयोग में किया जाता है। 'रत्नावली' में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता है। उदयन और रत्नावली के विलास-व्यापारों में श्रृंगार और हास्य रस के साथ कैशिकी वृत्ति के दर्शन होते हैं।

नाटिका में विमर्श सन्धि स्वल्प होती है। 'रत्नावली' में विमर्श सन्धि का अभाव-सा है। क्योंकि फल-प्राप्ति में विघ्नों के उपस्थित होने पर विमर्श सन्धि होती है। 'रत्नावली' में उदयन को रत्नावली की प्राप्तिरूपी फल की आशा होने पर विघ्न उपस्थित नहीं होते हैं। 'रत्नावली' के चतुर्थ अंक में सागरिका को वासवदत्ता अन्तःपुर में बन्दी बनाकर उज्जयिनी भेजने की अफ़वाह फैला देती हैं। उदयन की विरहाग्नि प्रदीप्त हो जाती है। परन्तु तभी राजा उदयन को विजयसेन विजय का समाचार देता है। राजा की मानसिक दशा सुधर जाती है। इसके बाद ही रत्नावली से उसका मिलन हो जाता है। इस प्रकार 'रत्नावली' में नाटिका के लक्षणों के अनुरूप स्वल्प विमर्श सन्धि है। उसका प्रभाव फल-प्राप्ति पर देर तक नहीं रहता है।

'रत्नावली' में नाटिका के सभी लक्षणों का शतप्रतिशत विनियोजन हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि धनंजय और आचार्य विश्वनाथ ने रत्नावली को आदर्श मान कर ही नाटिका के लक्षण प्रस्तुत किये हैं। अतः रत्नावली एक आदर्श नाटिका है।

प्रियदर्शिका और रत्नावली में साम्य

'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' दोनों ही श्रीहर्ष की कृतियाँ हैं। दोनों नाटिकाओं में वस्तु-विन्यास अत्यन्त प्रभावशाली और सुनियोजित है। दोनों नाटिकाओं में गतिशीलता और धारावाहिकता है। दोनों में कल्पना की ऊँची उड़ान भी देखने को मिलती है। 'प्रियदर्शिका' में कवि का कल्पना-पक्ष उतना उभरकर सामने नहीं आया है, जितना 'रत्नावली' में। 'रत्नावली' में कवि-कल्पना अपने प्रौढ़ रूप में है। 'प्रियदर्शिका' में गर्भ नाटक की मौलिक कल्पना है। इसी प्रकार 'रत्नावली' में ऐन्द्रजालिक का दृश्य मौलिक अवदान है। इसमें वेशभूषा से सम्बन्धित नवीन उद्भावनाएँ की गयी हैं। इसके कारण ही सागरिका अपने आप को वासवदत्ता के रूप में प्रस्तुत कर पाती है।

दोनों नाटिकाओं में कतिपय साम्य दिखायी पड़ते हैं। जैसे दोनों नाटिकाओं में राजा अपनी प्रियतमा पर कुछ उपकार करता है। 'प्रियदर्शिका' में वह उसे भ्रमर-बाधा से बचाता है और विष का प्रभाव उतारता है। उधर 'रत्नावली' में वह फाँसी लगाकर प्रियतमा को मरने से बचाता है और कृत्रिम आग की लपटों से भी उसकी रक्षा करता है। दोनों नाटिकाओं में अन्य कई दृष्टि से भी साम्य है। यथा—

1. दोनों की कथावस्तु प्रसिद्ध उदयन-वासवदत्ता की कथा पर आश्रित है।

2. दोनों में प्रेम-व्यापारों में भी समता है। जैसे नायिका का नायक पर मुग्ध होना गुप्त रूप से नायक और नायिका को मिलाने का प्रयत्न किया जाना, षड्यंत्र का भेद खुल जाना, नायिका का बन्दी बनाया जाना और फिर वासवदत्ता द्वारा उनका उदयन से पाणिग्रहण कराना।

3. दोनों की कथाओं में भी साम्य है। जैसे—दोनों नायिकाएँ राजकुमारी हैं। दोनों किसी विपत्ति में पड़ती हैं। संयोगवश दोनों वासवदत्ता की शरण में आती हैं। दोनों वासवदत्ता के पास दासी बनकर रहती हैं। दोनों वासवदत्ता से किसी प्रकार संबद्ध हैं। नाटक के अन्त में, वास्तविकता का ज्ञान होता है। उपनायिकाओं को कोई नहीं पहचानता। वासवदत्ता अपने किये पर पश्चाताप करती है तथा

ईर्ष्यालु वासवदत्ता में भगिनी-प्रेम प्रकट होता है। स्वयं वासवदत्ता उदयन से उनका पाणिग्रहण कराती है।

4. दोनों में शृंगार-रस प्रमुख है।

5. दोनों का नायक धीरललित है।

6. दोनों में नायक भ्रमरवृत्तिक है। वह पुरानी प्रेमिका को भुला देता है और इसके लिए अपमान सहने को भी तैयार रहता है।

7. दोनों नायिकाएँ अपने पिता के द्वारा उदयन के लिए वाग्दान की गयी हैं, परन्तु नायक उदयन को इस बात का ज्ञान नहीं है।

8. दोनों नायिकाएँ अपने रूप-सौन्दर्य से नायक को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। नायक छिपकर उनसे प्रेमालाप करता है।

9. नायिकाओं को नायक से मिलाने में विदूषक का सहयोग प्राप्त होता है। दोनों नायिकाएँ बन्दी बनायी जाती हैं।

10. दोनों नाटिकाओं में मौलिकता कम है, किन्तु लालित्य अधिक है।

11. दोनों में शृंगार-रस के अनुकूल वातावरण बनाया गया है।

12. नाट्यकला के विकास की दृष्टि से 'प्रियदर्शिका' जहाँ अप्रौढ़ कृति है, वहाँ 'रत्नावली' में कला का परिपाक और प्रौढ़ता देखी जा सकती है।

कथावस्तु की दृष्टि से भी 'प्रियदर्शिका' से 'रत्नावली' की कथा अधिक सुघटित और सुग्रथित है। घटना में गतिशीलता है। 'रत्नावली' के चतुर्थ अंक में ऐन्द्रजालिक का दृश्य हर्ष की कल्पना-शक्ति की उर्वरता को सूचित करता है। इसी प्रकार द्वितीय अंक में पिंजरे से मैना के निकलने, सागरिका की बातों के दुहराने और राजा के द्वारा उनके सुने जाने की कल्पना अनुपम है। यह मूल घटना और नाटिका को गति देने में सहायक सिद्ध होती है। इसी प्रकार वासवदत्ता और सागरिका के वस्त्रादि-परिवर्तन के दृश्य भी स्वाभाविक और प्रभावकारी हैं। 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' की कई कल्पनाओं में 'मालविकाग्निमित्र' का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वासवदत्ता का चरित्र ईर्ष्यालु ज्येष्ठा नायिका का है और प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों नायिकाएँ सुन्दर, भोली-भाली, मुग्धा नायिकाएँ हैं। वे इस तथ्य को छिपाये रखती हैं कि उनका वाग्दान उदयन के लिए हुआ है। इससे नाटकीय वस्तु आगे बढ़ पाती है। भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वर्णित राजा उदयन का चरित्र श्रीहर्ष के उदयन से भिन्न है। भास का उदयन गंभीर प्रकृति का है। भास की वासवदत्ता भी गंभीर और आत्मबलिदान की इच्छुक है। जबकि हर्ष की वासवदत्ता ईर्ष्यालु है, जिसे अधिक स्त्रियोचित कहा जा सकता है।

रत्नावली : सामाजिक पृष्ठभूमि और नाट्यशास्त्रीय तत्त्व

'रत्नावली' नाटिका यद्यपि समसामयिक समाज की अवस्था का वर्णन करने के लिए नहीं लिखी गयी; तथापि तत्कालीन समाज का कुछ चित्रण अवश्य नाटक में प्राप्त होता है, क्योंकि साहित्य-समाज का प्रतिबिम्ब है। इस नियम के अनुसार कवि जाने या अनजाने समाज का चित्रण समाज में प्रस्तुत करना है। यह नाटिका अन्त.पुर के प्रणय से संबद्ध है। इसमें अन्त:पुरिकाओं के आमोद-प्रमोद के लिए जो दृश्य उपस्थित किये गये हैं, उनसे तत्कालीन सामाजिक अवस्था का बोध होता है। 'रत्नावली' के प्रथम अंक में मदन-महोत्सव का आयोजन किया गया है। इसमें सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष स्वच्छन्द रूप से भाग ले रहे हैं।

इससे ज्ञात होता है कि उस समय अनेक पर्वों को मनाने का प्रचलन था। इन पर्वों पर स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते थे। मदन-महोत्सव, वसन्तोत्सव तथा होली के अवसर पर स्त्रियाँ पिचकारी लेकर नागरजनों पर रंगीन जल डाल रही हैं। साथ ही मृदंग आदि बजाये जा रहे हैं। सबके मुख केसर गुलाल आदि से पीले-लाल-गुलाबी हो गये हैं। पूरे आँगन में पानी और गुलाल आदि की कीचड़-सी फैली हुई है। आँगन ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे सिन्दूर से रँगा हुआ हो। स्त्रियाँ मदिरापान से मत्त हैं। उनके कपोलों से गुलाल गिर रहा है। इस आयोजन में चतुर नागरिक भी स्त्रियों पर पिचकारियों से रंग डाल रहे हैं। इसके कारण स्त्रियाँ भयभीत-सी हैं। ('रत्नावली' 1. 11.13)

उक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि सामाजिक उत्सवों में स्त्री और पुरुष समान रूप से भाग लेते थे। होली के पर्व पर आजकल की तरह उस समय भी आमोद-प्रमोद, पिचककारियों से रंग छोड़ना, नृत्य, नगाड़े आदि बजाना तथा कुछ मादक मद्य वस्तुओं का सेवन करना प्रचलित था। मृदंग आदि की ध्वनियों से चारों ओर दिशाओं के मुखरित होने का उल्लेख है।

> धारायन्त्रविमुक्तसन्ततपय: पूरप्लुते: सर्वत:
> सद्य: सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्राङ्गणे।

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ।।रत्ना० 1.11

'पिचकारियों से छोड़ा हुआ जल चारों ओर फैल रहा है। उसी समय भीड़ की रगड़ से आँगन में कीचड़ हो गयी है। मदमत्त कामिनियों के कपोलों से गिरते हुए सिन्दूर से (अबीर-गुलाल से) वह कीचड़ लाल हो गयी है। मनुष्यों के पैर से लगकर सारा प्रांगण लाल दिखायी दे रहा है।'

मदन-महोत्सव के अवसर पर कामदेव की पूजा भी प्रचलित थी। इस पूजा में कुलवधुओं के साथ उनके पति भी बुलाये जाते थे। नृत्य आदि के लिए वारवनिताओं को भी आमंत्रित किया जाता था।

'रत्नावली' के प्रथम अंक के मदन-महोत्सव और द्वितीय अंक में सागरिका और सुसंगता के चित्रण से उस समय की स्त्रियों की वेश-भूषा, शृंगार-सामग्री और मनोविनोद के साधनों पर भी प्रकाश पड़ता है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय अभिजातवर्गीय स्त्रियों की दशा उन्नत थी। वे गान, नृत्य और चित्रकला आदि में दक्ष होती थीं। दासियाँ भी इन कलाओं में निपुण होती थीं। सुसंगता के द्वारा चित्र-रचना और चेटियों के नृत्य तथा गान से यह बात सिद्ध होती है। सागरिका द्वारा बनाया गया उदयन का चित्र और सुसंगता द्वारा बनाया गया सागरिका का चित्र अत्यन्त कलात्मक और सजीव हैं। इनमें मनोभावों का भी चित्रण किया गया है। स्त्रियाँ अनेक प्रकार का शृंगार करती थीं। वे अपनी वेणियों में पुष्पमाला और फूल गूँथती थीं। चरणों में लाक्षारस लगाती थीं। हाथ में कंगन, कानों में कर्णाभरण, गले में रत्नमाला और सुहागिन स्त्रियाँ पैरों में नूपुर भी धारण करती थीं। सागरिका की रत्नमाला बहुमूल्य एवं रत्नजटित है। इससे उसकी पहचान की जाती है। इससे ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ अनेक प्रकार का शृंगार करती थीं। स्त्रियों में परदे का भी प्रचलन था। वासवदत्ता घूँघट में मुखमण्डल छिपाकर आती है। विवाहिता पत्नी का घर में विशेष आदर था। जब वासवदत्ता रत्नावली को कारागार में डाल देती है, तो राजा भी उसे छुड़ाने में असमर्थ पाता है। इससे ज्ञात होता है कि कुलवधू का पति पर पूर्ण अधिकार होता था। वह पति पर अंकुश भी लगा सकती थी। अन्तःपुर के मामलों में भी वही सर्वाधिकारिणी होती थी।

मदन-महोत्सव के दृश्य में वर्णित विवरण से ज्ञात होता है कि लोग मनोविनोद के लिए तोता-मैना आदि पालते थे। उनको बोलने आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। राजाओं के यहाँ बन्दर आदि जानवर भी पाले जाते थे। अन्तःपुर में नपुंसक, बौने, किरात आदि भी रहते थे। राजाओं के यहाँ अनेक दास-दासियाँ होती थीं, जिनके साथ शिष्ट व्यवहार किया जाता था।

लोग मणि और मन्त्र आदि पर तथा तंत्र-मंत्र में विश्वास करते थे और भूत-

प्रेत आदि से डरते थे। विदूषक सारिका की आवाज़ को भूत की आवाज़ समझकर डरता है। अपनी बातों पर विश्वास दिलाने के लिए शपथ खाने का भी प्रचलन था। वसन्तक अपने यज्ञोपवीत की शपथ खाता है। उस समय इन्द्रजाल का जादू दिखानेवाले ऐन्द्रजालिक भी हुआ करते थे। ऐन्द्रजालिक जनता को जादू के खेल दिखाकर मनोरंजन करते थे। सिद्ध महात्माओं की बातों पर लोगों का विश्वास था। मंत्री यौगन्धरायण को जब यह ज्ञात होता है कि एक सिद्ध की इस घोषणा से कि 'रत्नावली' से जो विवाह करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा, यह सुनकर राजा भी उदयन से रत्नावली का विवाह कराना चाहता है।

उस समय समुद्री यात्रा का भी प्रचलन था और समुद्री मार्ग से व्यापार भी होता था। सागरिका समुद्र में व्यापारियों को मिलती है और वे उसे यौगन्धरायण को सौंप देते हैं। यह भी प्रतीत होता है कि समुद्र पार के देशों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये जाते थे। सागरिका का विवाह इसका एक उदाहरण है।

'रत्नावली' नाटिका के द्वारा तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसमें स्त्रियों की स्थिति, शृंगार के साधन, वेश-भूषा और मनोविनोद के साधन आदि का उपयोगी विवरण प्राप्त होता है।

नाट्यशास्त्रीय तत्त्व

कथावस्तु—कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया जाता है—आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक वह कथा है, जो मुख्य कथा होती है। गौण कथा को प्रासंगिक कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं—पताका और प्रकरी। पताका उस कथा को कहते हैं, जो नाटक में दूर तक चली जाती है। इसका नायक दूसरा होता है। वह मुख्य नायक का साथी होता है। छोटे प्रसंगों को प्रकरी कहते हैं।

कथावस्तु को भी तीन भागों में विभक्त किया जाता है—

1. **प्रख्यात**—इतिहास पर अवलम्बित।
2. **उत्पाद्य**—कवि-कल्पित।
3. **मिश्र**—कुछ ऐतिहासिक और कुछ कवि-कल्पित।

इस दृष्टि से 'रत्नावली' में आधिकारिक वस्तु उदयन और रत्नावली की प्रेम-कथा है। वासवदत्ता का प्रणय-कोप और उसके फलस्वरूप सागरिका का बन्दी बनाया जाना आदि पताका के अन्तर्गत है। प्रकरी के रूप में बन्दर का उत्पात तथा ऐन्द्रजालिक का प्रदर्शन हैं। यह इतिहास पर आश्रित उदयन और वासवदत्ता की कथा से संबद्ध है। अतः प्रख्यात वस्तु है।

अर्थप्रकृतियाँ—अर्थप्रकृतियों की संख्या पाँच है। नाटकीय कथावस्तु में भी पाँच तत्त्व निहित होते हैं।

1. **बीज**—जो बीज के तुल्य प्रारम्भ में संक्षेप में बताया जाता है और बाद में

उसका विस्तार हो जाता है।

2. बिन्दु—यह अवान्तर कथा के कारण मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता है तथा मूल कथा को आगे बढ़ाता है।

3. पताका—यह प्रासंगिक कथा है, जो दूर तक साथ चलती है।

4. प्रकरी—यह थोड़ी दूर चलनेवाली प्रासंगिक कथा है।

5. कार्य—यह उद्देश्य या कार्य का फल है। 'रत्नावली' में इनका मनोज्ञ संघटन है।

1. बीज—'रत्नावली' के प्रथम अंक में यौगन्धरायण के वाक्य बीज है। भाग्य मनचाही वस्तुओं को मिला देता है। यह बीज रूप में कहा गया है तथा उदयन और सागरिका के भावी विवाह का संकेतक है।

(2) बिन्दु—इस नाटक में मदन-पूजा के अवसर पर वासवदत्ता राजा की पूजा करती है। सागरिका छिपकर वासवदत्ता द्वारा पूजित राजा उदयन को देखती है और कामदेव का साक्षात् रूप समझकर स्वयं भी पुष्प अर्पित कर देती है। उसे वैतालिक द्वारा पठित श्लोक से ज्ञात होता है कि ये राजा उदयन हैं। जिनके लिए वह प्रदान की गयी थी। वह राजा पर अनुरक्त हो जाती है और कथा आगे बढ़ती है। इस प्रकार वैतालिक का पाठ बिन्दु रूप में है।

(3—4) पताका-प्रकरी—पताका और प्रकरी का उल्लेख कथावस्तु के अन्तर्गत किया जा चुका है।

(5) कार्य—उदयन और रत्नावली का विवाह इस कथा का कार्य या लक्ष्य है।

अवस्थाएँ—नाटक के कार्य की प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये नाटक की गतिविधि को सूचित करती हैं। ये पाँच अवस्थाएँ हैं—

1. आरम्भ—इसमें मुख्य फल के लिए नायक की उत्सुकता होती है।

2. यत्न—फल-प्राप्ति के लिए नायक यत्न करता है।

3. प्राप्त्याशा—इसमें फल-प्राप्ति की संभावना और असभावना दिखायी जाती है।

4. नियताप्ति—विघ्नों के हट जाने से फल-प्राप्ति निश्चित प्रतीत होती है।

5. फलागम—इसमें इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है।

इस दृष्टि से इस नाटिका में व्यापारियों से प्राप्त कन्या को यौगन्धरायण द्वारा सागरिका नाम से अन्तःपुर में रखना कार्य की आरंभावस्था है। राजा पर अनुरक्त सागरिका द्वारा उदयन के दर्शन न होने पर उसका चित्र बनाकर आत्म-मनोविनोद कार्य की यत्न अवस्था है। वासवदत्ता के वेश में सागरिका का राजा से मिलन की योजना और उसका भेद वासवदत्ता को पता चल जाने पर सागरिका द्वारा आत्महत्या का प्रयास कार्य की प्राप्त्याशा की अवस्था है। वासवदत्ता को

प्रसन्न करने से ही कार्य की सफलता होगी, अतः उसको मनाने के लिए राजा द्वारा प्रयत्न करना कार्य की नियताप्ति अवस्था है। अन्त में राजा द्वारा रत्नावली को प्राप्त करना फलागम अवस्था है।

सन्धियाँ—पाँच अर्थप्रकृतियों को जो पाँचों अवस्थाओं से संबद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—

1. **मुख**—यह आरम्भ और बीज को मिलाकर होती है। मुखसन्धि में बीज की उत्पत्ति का विवरण होता है।

2. **प्रतिमुख**—यह बिन्दु और यत्न को मिलाकर होती है। इसमें बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है।

3. **गर्भ**—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर होती है। गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए फिर अन्वेषण का वर्णन होता है।

4. **विमर्श**—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर **विमर्श** सन्धि होती है। इसमें गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है। इसमें शाप आदि के कारण विघ्न दिखाया जाता है।

5. **उपसंहृति**—यह कार्य और फलागम को मिलाकर होती है। इसमें मुख्य फल का वर्णन किया जाता है।

(1) **मुख सन्धि**—इस नाटिका में प्रारम्भ अवस्था सागरिका को अन्तःपुर में रखने की मंत्री की अभिलाषा और बीज अर्थप्रकृति के रूप में तदर्थ किया जाने वाला कार्य है। मुख सन्धि प्रारम्भ से लेकर दूसरे अंक में सागरिका द्वारा राजा के चित्रांकन तक है।

(2) **प्रतिमुख सन्धि**—रत्नावली में चित्रलेखन से लेकर वासवदत्ता द्वारा सागरिका का चित्र देखते हुए राजा को पकड़ने तक प्रतिमुख सन्धि है।

(3) **गर्भ सन्धि**—सागरिका के विरह में उदयन का दुःखित होना, छद्मवेश में सागरिका का आना, वासवदत्ता को यह भेद मिलना, सागरिका का फाँसी लगाने का प्रयत्न, राजा द्वारा उसको बचाया जाना, उदयन और सागरिका के वार्तालाप पर क्रुद्ध वासवदत्ता द्वारा सागरिका को बन्दी बनाना वर्णन तक गर्भ सन्धि है।

(4) **विमर्श सन्धि**—नाटिका के लक्षणों के अनुसार नाटिका में विमर्श सन्धि स्वल्प होती है। 'रत्नावली में' वासवदत्ता द्वारा सागरिका को बन्दी बनाये जाने पर राजा उदयन को मिलन की आशा क्षीण हो जाती है। उसी समय विजय वर्मा उपस्थित होकर विजय की सूचना देता है। राजा की मनःस्थिति बदल जाती है। यहाँ तक '**विमर्श सन्धि**' है।

(5) **निर्वहण सन्धि**—उदयन के हाथ में सागरिका को अर्पित करके सुखद समाप्ति तक **निर्वहण सन्धि** है।

श्रीहर्ष की शैली

श्रीहर्ष वैदर्भी रीति के सफल कवि हैं। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य के साथ ही ओज गुण का भी समन्वय है। उनकी भाषा प्रौढ़, सुसंस्कृत और भावों की अभिव्यक्ति में समर्थ है। भाषा में सर्वत्र गतिशीलता है। कवि के रूप में उनमें प्रौढ़ता है और उर्वर कल्पनाशक्ति है। उनकी कल्पनाएँ सर्वथा नवीन हैं। कवित्व के साथ ही उनके काव्य में संगीतात्मकता है। हर्ष की दो नाटिकाओं में शृंगार रस प्रधान है और नागानन्द में शान्तरस। वीर (दयावीर) मुख्य है। उन्होंने यथास्थान वीर, हास्य और करुण रस का भी समावेश किया है। कहीं भी अलंकार के लिए अलंकार का प्रयोग नहीं किया गया है। स्वाभाविक रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास आदि का सुन्दर प्रयोग मिलता है। वह प्रकृति के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। प्राकृतिक वर्णनों में यथार्थता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है। प्राकृतिक वर्णनों में वृक्ष, वन, पर्वत, राजभवन, उपवन, सूर्योदय, सूर्यास्त, ग्रीष्म आदि का सुरुचिपूर्ण ढंग से चित्रण किया गया है। कवि के नाटकों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, दर्शन, कामशास्त्र, नीति-शास्त्र, वैद्यक और ज्योतिष आदि का भी विशेषज्ञ है। विविध शास्त्रों के ज्ञान के कारण उनके नाटकों में असाधारण रोचकता है।

कवि का भाषा पर भी अपूर्व अधिकार है। वह प्रसंग के अनुसार सरल से सरल और कठिन कठिन से संस्कृत का प्रयोग कर सकता है। शृंगार आदि के भावों में वैदर्भी रीति के साथ प्रसाद और माधुर्य गुणों का समन्वय दिखायी पड़ता है। राजा को सन्देह है कि बन्दी बनायी गयी सागरिका ने प्राण छोड़ दिये हैं। वह उसके विरह में अत्यन्त खिन्न होकर अपने लिए भी उसके साथ ही मरने की कामना करता है—

> प्राणाः परित्यजत काममदक्षिणं मां
> रे दक्षिणा भवत मद्वचनं श‍ृणुध्वम्।
> शीघ्रं न यात यदि तन्मुषिताः स्थ नूनम्
> याता सुदूरमधुना गजगामिनी सा।। रत्ना० 4.3

—'हे प्राण मेरी बात मानो। अत्यन्त अनुदार मुझको छोड़ दो। मेरे अनुकूल हो जाओ। यदि शीघ्र नहीं जाते हो तो तुम लुट गये हो। क्योंकि तब तक गजगामिनी सागरिका निश्चय ही बहुत दूर जा चुकी होगी।'

राजा वासवदत्ता के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसमें सभी गुणों का समावेश पाता है। वह कहता है—

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्।
श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव॥ रत्ना० 1.25

—'सायंकाल का समय है, कमल बन्द हो रहे हैं और भौंरे उनमें छिप रहे हैं। राजा उत्प्रेक्षा करता है कि उसके मुख की सुन्दरता से पराजित होकर कमल मुरझा रहे हैं। उसकी सखियों आदि के संगीत से लज्जित होकर भ्रमरियाँ कमलों में छिप रही हैं।'

इस श्लोक में भाव-सौन्दर्य और भाषा-माधुर्य आस्वाद्य है। इसमें सुन्दर उत्प्रेक्षा अलंकार भी है।

भावों की सुकुमारता भी सुकुमार शब्दों में वर्णित की गयी है। तृतीय अंक में राजा उदयन वासवदत्ता के वेश में आयी सागरिका से सागरिका के प्रति अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुए कहता है—

किं पद्मस्य रुचं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं
वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम्।
वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरभ्युद्गतो
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति बिम्बाधरे॥ रत्ना० 3.13

—'सायंकाल का समय है। चन्द्रमा उदय हो रहा है। राजा सागरिका के मुख-चन्द्र में चन्द्रमा की सभी विशेषताओं को देखते हुए कहता है 'तुम्हारा मुख कमल की शोभा चुरा रहा है। यह नेत्रों को आनन्द दे रहा है। तुम्हारा मुखचन्द्र कामदेव की वृद्धि कर रहा है। तुम्हारे इस मुखचन्द्र के रहते हुए चन्द्रमा का उदय होना मूर्खता की बात है। यदि चन्द्रमा को इस बात का गर्व हो कि उसमें अमृत है, तो वह अमृत तुम्हारे अधर में भी है।'

स्पष्ट है कि प्रेमिका को देखकर प्रेमी के हृदय में कितना उन्माद है! भाव-सौन्दर्य के साथ ही भाषा-सौन्दर्य का दर्शन होता है। सागरिका उदयन के प्रति अनुरक्त है। उदयन को दुर्लभ मानकर वह खिन्न है। उसका कथन है कि प्रेम का मार्ग भी अत्यन्त विषम है। इसमें मरण ही सबसे बड़ा रक्षक है।

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नु वरमेकम्॥ रत्ना० 2.1

—'दुर्लभ व्यक्ति से मेरा प्रेम है, भारी लज्जा है और शरीर पराधीन है। हे प्रिय सखी! मेरा यह प्रेम भयानक है। केवल मरण ही मेरा सबसे बड़ा रक्षक है।'

कवि ने प्रेमी-प्रेमिका के मनोभावों का सुन्दर चित्रण किया है। राजा उदयन सागरिका के प्रेम में उन्मत्त है। वह वासवदत्ता को सागरिका नाम से पुकारता है और त्रुटि ज्ञात होने पर वासवदत्ता से क्षमा-याचना करता है। वासवदत्ता कुपित होकर चली जाती है। राजा को संदेह है कि हमारे घनिष्ठ प्रेम में यह घटना बहुत दुःखद सिद्ध होगी। आज तक उसने कोई अपराध नहीं किया था। उसे भय है कि यह प्रथम अपराध दोनों के प्रेम में भेद डालेगा। वासवदत्ता को यह भेद असह्य होगा और वह अपने जीवन को समाप्त करना चाहेगी।

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया।
प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति॥ रत्ना० 3.15

—'प्रेम के अत्यन्त आदर के कारण हम दोनों का स्नेह प्रतिदिन बढ़ता गया। अतः पहले कभी न किये गये मेरे इस अपराध को आज मेरे द्वारा किया हुआ देखकर सहन न करनेवाली प्रिया वासवदत्ता निश्चित ही प्राण त्याग देगी।' क्योंकि प्रगाढ़ प्रेम में दरार पड़ना असह्य होता है।

सागरिका के प्रेम में प्रमत्त राजा उदयन बार-बार अपनी त्रुटि के लिए पकड़ा जाता है। वह क्षमा-याचना भी करता है। परन्तु अगली त्रुटि उसकी क्षमा-याचना को व्यर्थ कर देती है। वासवदत्ता खिन्न है। वह अपने प्रणय-कोप को आँसुओं से ही दूर करती है। चिन्तित राजा वासवदत्ता के विषय में कहता है कि—

सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं
वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः।
प्रत्यापत्तिमुपागता न हि तथा देवी रुदत्या यथा
प्रक्षाल्येव तयैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम्॥ रत्ना० 4.1

—'छलपूर्ण शपथों से, मधुर वचनों से, अत्यन्त मनोनुकूल आचरण से, परम लज्जा प्रकाशित करने से, पैरों पर गिरने से और बार-बार सखियों की बातों से देवी उतनी प्रकृतिस्थता को प्राप्त नहीं हुई, जितना कि रोती हुई उन्होंने स्वयं ही आँसुओं से मानो क्रोध को धोकर हटा दिया।'

सायंकाल का समय है। सूर्य अस्त हो रहा है। कमलिनी दुःख से मुरझा रही है। सूर्य अपनी प्रिया कमलिनी के मस्तक पर हाथ रखकर आश्वासन देता है कि भाग्य-चक्र के कारण मुझे प्रवास में जाना पड़ रहा है। मैं स्वयं आकर सोती हुई तुमको जगाऊँगा।

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्या
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥ रत्ना० 3.6

इस श्लोक में अचेतन प्रकृति के साथ सचेतन भावात्मक तादात्म्य स्थापित किया गया है। जैसे एक प्रेमी प्रवास में जाते हुए अपनी पत्नी को आश्वासन देता है कि मैं फिर लौटकर तुम्हें प्रसन्न करूँगा। उसी प्रकार सूर्य भी अपनी प्रिया कमलिनी को अश्वासन देता है कि वह कल प्रातः फिर लौटकर आयेगा और उसे प्रसन्न करेगा। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति का यह सुन्दर उदाहरण है।

कवि ने यथास्थान अपनी प्रबुद्ध कल्पना-शक्ति का भी उपयोग किया है। सागरिका के वियोग में राजा उदयन संतप्त है। वह कामदेव की असाधारण योग्यता का वर्णन करते हुए कहता है कि मन स्वभाव से ही चंचल और अणु होने से अलक्ष्य है। फिर भी न जाने कैसे कामदेव ने अपने सारे बाणों से इसको एक साथ ही बींध दिया। राजा का कथन है कि—

मनश्चलं प्रकृत्यैव दुर्लक्ष्यं च तथापि मे।
कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ॥ रत्ना० 3.2

—'मन स्वभाव से चंचल है और कठिनता से दृश्य है, तो भी कैसे मेरे इस मन को कामदेव ने अपने समस्त बाणों से एक साथ बींध दिया ?'

कवि ने भाव के अनुसार ही शैली में भी भेद किया है। युद्ध-वर्णन में गौडी रीति का दर्शन होता है। भयंकर युद्ध मे रुमण्वान् अपने शत्रु कोसल-नरेश पर सहसा आक्रमण करता है। दोनों के युद्ध का जीवन्त चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है —

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागान्
विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन्।
वेगाद्बाणान्विमुञ्चन् समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिर्निपत्य
प्रत्यैच्छद् वाञ्छिताप्तिद्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान् क्षणेन ॥

रत्नावली 4.5

—उसी क्षण दूसरे विन्ध्याचल के समान गजेन्द्रों की सेना की घनी व्यूह-रचना से दिशाओं के मंडल को घेरता हुआ विन्ध्य (दुर्ग) से निकलकर युद्ध करने के लिए सामने आ गया। तदनन्तर मदमत्त हाथियों के समूह से कुचली गई पैदल सेनाओंवाले रुमण्वान बाणों को छोड़ते हुए वेग से तुरन्त झपटकर अभिलषित कोसल-नरेश के साथ युद्ध की व्याप्ति से द्विगुणित वेगशाली होकर उसपर टूट पड़े।

कवि ने अलंकारों का भी सुन्दर और प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। उसने

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष और अप्रस्तुत आदि अलंकारों का यथास्थान विन्यास किया है । संध्याकाल से संबन्धित रूपक का एक चित्र देखिए :

संध्या का समय है । पूर्व दिशा में चन्द्रोदय होनेवाला है । पूर्व दिशा का मुख तनिक धवलता लिये हुए है । राजा पूर्व दिशा की उपमा विरहजात खेद के कारण पीले पड़े हुए रमणी के मुख से देता है—

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ।। रत्ना० 1.24

—'यह पूर्व दिशा पीले मुख से हृदय-स्थित प्रियतम को सूचित करनेवाली रमणी की तरह उदयाचल के तट में छिपे हुए चन्द्रमा को सूचित कर रही है ।'

कवि उत्प्रेक्षा करता है कि ब्रह्मा ने जब इस सागरिका के मुखचन्द्र को बनाया होगा, तब वह स्वयं संकट में पड़ गये होंगे । क्योंकि वे कमलासन हैं । उनके आसन में जो कमल है, वह मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर मुरझा जाएगा । इस प्रकार ब्रह्मा को बैठने के लिए खिला हुआ कमल नहीं मिल पायेगा—

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद ध्रुवम् ।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ।। रत्ना० 2.10

—'ब्रह्मा विलक्षण पूर्णचन्द्र को इस कन्या का मुख बनाकर निश्चय ही अपने आसन-कमल के संकुचित हो जाने से संकटापन्न हो गये होंगे ।'

कवि ने अन्य द्वीप से प्राप्त सागरिका के उदयन के निवास पर आने और दोनों के समागम को दैवी घटना बताते हुए अर्थान्तरन्यास अलंकार प्रस्तुत किया है कि भाग्य अनुकूल होने पर वह कहीं से भी मनोरथ की सिद्धि करा सकता है—

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।। रत्ना० 1.6

—'अनुकूल भाग्य दूसरे देश से भी, समुद्र के भीतर से भी और दिशा के अन्तिम भाग से भी इष्ट वस्तु को शीघ्र लाकर मिला देता है ।'

कवि ने कुछ स्थानों पर श्लेष का भी सुन्दर प्रयोग किया है । राजा उदयन चित्रगत सागरिका को एक राजहंसी मानता है । उसके गुणों के वर्णन में श्लेष अलंकार का उपयोग निम्न प्रकार किया गया है—

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ।। रत्ना० 2.8

—'विलास से लक्ष्मी को तिरस्कृत करनेवाली चित्रांकित यह कौन है जो हमारे प्रति अधिक पक्षपात करती हुई राजहंसी की तरह मन में प्रवेश कर रही है । जैसे सुन्दर चालवाली राजहंसी अपनी लीलापूर्वक चाल से कमलों को कंपित करती है तथा मानसरोवर में प्रवेश करती है ।'

छन्द-विन्यास—हर्ष के नाटकों के विवेचन से ज्ञात होता है कि उसकी प्रवृत्ति बड़े छन्दों के प्रयोग की ओर है। बड़े छन्द नाटकीय दृष्टि से अनुपयुक्त होते हैं जबकि वृत्त-वर्णन की दृष्टि से अधिक उपयुक्त होते हैं। बड़े छन्दों का आश्रय लेकर कवि अपने भावों, वर्णनों और क्लिष्ट कल्पनाओं का अधिक विशद रूप प्रदान करने में सफल होता है। बड़े छन्दों के द्वारा कवि की प्रौढ़ता और विदग्धता का बोध होता है। यत्र-तत्र अर्थगर्भित छोटे छन्दों के भी प्रयोग हैं।

हर्ष के विशेष प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, श्लोक और आर्या हैं। **'रत्नावली'** में जिन तेरह छन्दों का प्रयोग हुआ है, वे हैं—शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, आर्या, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, श्लोक, शालिनी, हिरणी, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी और पृथ्वी। रत्नावली में विशिष्ट छन्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है : शार्दूलविक्रीडित—23, स्रग्धरा—11, श्लोक—9, आर्या—9, प्राकृत आर्या—5।

निष्कर्ष—कवि श्रीहर्ष सुन्दर भावों के प्रयोग, भावानुरूप भाषा के प्रयोग, उच्चकोटि की कल्पनाओं, विभिन्न अलंकारों और छन्द प्रयोगों में विशेष निपुण हैं। उसकी शैली सहृदयों के मन को अत्यन्त आकृष्ट करनेवाली है।

रस-परिपाक

नाटिका में धीरललित नायक के प्रणय-वृत्त का चित्रण रहता है। अतएव नाटिका में शृंगार रस प्रमुख होता है। 'रत्नावली' में भी शृंगार ही अंगीरस है। इसमें शृंगार के अनुकूल वातावरण की सृष्टि की गयी है। इसमें शृंगार के दोनों पक्षों का सफल वर्णन हुआ है। श्रीहर्ष ने शृंगार-प्रधान नाटिका के अनुकूल ही मंगलाचरण में नवोढ़ा पार्वती और शिव के मिलन का दृश्य उपस्थित किया है।

औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः।
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमे
संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु वः॥ रत्ना० 1.2

—'गौरी नवोढ़ा है। प्रथम समागम का चित्रण है। वह लज्जा के कारण शिव के पास जाने में संकोच करती है। संबंधी स्त्रियाँ उत्साह बढ़ाते हुए उसे शिव के समीप ले जाती हैं। वह सामने महादेव रूप वर को देखती है। वर को देखते हुए वह रोमांचित और भयभीत है। ऐसी पार्वती का हँसते हुए शिव ने आलिंगन किया।

इसमें कवि ने प्रथम मिलन का सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है।

राजा चित्रलिखित सागरिका को देखकर अपनी रसिकता का परिचय देते हुए कहता है—

कृच्छादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निस्पन्दतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने॥ रत्ना० 2.11०

—'राजा कहता है कि मेरी दृष्टि कठिनाई से उसकी जंघाओं को पार कर पाती है। फिर थोड़ी देर नितम्ब स्थल पर रुकती है। इसके बाद त्रिवली-रूपी तरंगों से ऊँचे-नीचे मध्यभाग पर रुकती है। फिर धीरे-धीरे उन्नत कुचों पर चढ़कर जल की बूंदे गिराती हुई आँखों को बार-बार देखती है

सागरिका का चित्र उसके लिए समुद्र में तैरना और अपनी प्यास बुझाने के लिए पहाड़ पर जाकर झरने का पानी पीने के तुल्य है ।

राजा उदयन अपनी प्रेमिका सागरिका की प्रतीक्षा में बैठा हुआ है । वह अभिसारिका के हाव-भाव को प्रकट करते हुए कहता है—

> प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
> घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।
> वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताऽप्यहो
> रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥ रत्ना० 3.9

—'संकेत-स्थान पर पहुँची हुई कामिनी यद्यपि शंकित होने के कारण अपनी प्रेम-पूर्ण दृष्टि से प्रेमी के मुख को नहीं देखती है । रस के आवेश में कण्ठ से आलिंगन के समय अपने कुचों को प्रिय के वक्षस्थल से सटने नहीं देती और प्रयत्नपूर्वक बार-बार यही कहती है कि मैं जा रही हूँ । फिर भी आश्चर्य है कि वह नायक को अत्यन्त आनन्द प्रदान करती है ।'

इस श्लोक में कामी युवक के हाव-भावों का सुन्दर वर्णन किया गया है ।

हर्ष ने विप्रलम्भ-शृंगार का भी सुन्दर चित्रण किया है । राजा उदयन सागरिका के वियोग में अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं । कामदेव के बाणों को संबोधित करते हुए उसका कथन है—

> बाणाः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जनः
> प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धिं गतम् ।
> दृष्टं तत् त्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं ।
> विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम् ॥ रत्ना० 3.3

—'कामदेव के पाँच ही बाण हैं और संसार में प्रसिद्ध है कि मेरे जैसे असंख्य व्यक्ति उसके लक्ष्य होते हैं । किन्तु हे कामदेव ! तुम्हारी यह बात आज मुझे विपरीत ज्ञात होती है, क्योंकि यह कामी जन(मैं) तुम्हारे द्वारा असंख्य बाणों से बिंधा हुआ मृत्यु की ओर ले जाया जा रहा है ।'

प्रस्तुत पद में पंच बाणों से पंचत्व (मृत्यु)की कल्पना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है ।

इसी प्रकार वियोग की अग्नि में जलती हुई सागरिका का प्रलाप उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है—**'भगवन् कुसुमायुध, निर्जितसकलसुरासुरो भूत्वा कथं स्त्रीजनं प्रहरन् न लज्जसे ।'** (रत्नावली, अंक 2)

—'हे भगवान् कामदेव तुम सभी देवों और दानवों के विजेता हो । मुझ अबला पर प्रहार करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?'

कवि ने विदूषक के द्वारा हास्य रस की सृष्टि की है । विदूषक की उक्तियाँ और चेष्टाएँ हास्यजनक हैं । वह कहीं भी बिना सोचे-समझे नृत्य करने लगता है । इस प्रकार के नृत्य के कारण ही चित्रपट गिर जाता है ।

नाटक में छूटे हुए बन्दर के उत्पात से तथा अन्तःपुर में आग की घटना के वर्णन में भयानक रस का दृश्य उपस्थित किया गया है। बन्दर को देखकर स्त्रियाँ भयभीत हैं। नपुंसक लज्जा छोड़कर भाग रहे हैं। बौने कंचुकी के वस्त्रों में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं। कुबड़े देखे जाने की आशंका से झुककर चुपचाप चल रहे हैं। (रत्नावली 2.3)। इसी प्रकार अन्तःपुर में आग की लपटों को देखकर स्त्रियाँ आर्तनाद कर रही हैं। आग की लपटों के फैल जाने से राजमहल के शिखर स्वर्ण के तुल्य कान्ति वाले हो गये हैं। उद्यान के घने वृक्ष अग्नि के ताप से झुलस गये हैं। अग्नि के कारण उठे हुए धुएँ से सजल मेघ का दृश्य उपस्थित हो गया है। (रत्नावली, 4.14)

रुमण्वान् द्वारा कोसल-नरेश को युद्ध में मारने के वर्णन में वीर रस का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। रुमण्वान् ने सैकड़ों बाणों के द्वारा कोसल-नरेश का वध करके विजय-श्री प्राप्ति की। (रत्नावली, 4.5-6)

निष्कर्ष यह है कि श्रीहर्ष यद्यपि शृंगार रस के चित्रण में विशेष सफल हैं; तथापि अन्य रसों का परिपाक भी बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया है और उन्हें यथास्थान प्रयुक्त किया गया है।

रत्नावली के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

राजा उदयन :

रत्नावली नाटिका में राजा उदयन एक धीरललित नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह स्वभाव से मृदु तथा कलाओं में दक्ष है। उदयन शक्तिशाली सम्राट् है। वह एक सौम्य, सहृदय, शिष्ट, उदार हृदय और लोकप्रिय राजा है। वह शत्रु के भी पराक्रम को स्मरण रखता है। उसकी लोकप्रियता अपने गुणों के कारण है। अतएव प्रस्तावना में कहा गया है कि उदयन का चरित्र लोकप्रिय है—'**लोके हारि च वत्सराजचरितम्**' (रत्ना 1.6)

उदयन एक प्रेमी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। उसका प्रेम अगाध है। वह अपनी प्रेमिका के विषय में यह ध्यान रखता है कि उसके कार्यों से प्रियतमा की क्या मानसिक दशा होगी ? वह जब उद्यान-लता पर दृष्टि डालता है, तब भी उसके मन में प्रियतमा की ही बात याद आती है।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवम्।
पश्यन् कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम्॥ (रत्ना० 2.4)

उसका प्रेम उत्कट है और वह अपने अहंभाव को भी उसी में खो देता है। उसकी प्रेमिका की दासी जब आकर यह कहती है 'देवी आज्ञापयति' अर्थात् देवी आज्ञा दे रही हैं—इस पर वह भयभीत हो उठता है कि उसने कथन में कोई त्रुटि की है। क्योंकि राजा को कोई दूसरा आज्ञा नहीं दे सकता है। और वाक्य को संशोधित करके जब उसने कहा कि देवी निवेदन करती हैं तो राजा उसका अभिप्राय जानकर विनम्रता-पूर्वक कहता है कि 'देवी आज्ञा देती हैं' यह कहना ही मुझे अधिक उपयुक्त लगता है।

राजा रूप का प्रेमी है। वह सागरिका के रूप-सौन्दर्य पर आकृष्ट है। जब वासवदत्ता को यह बात ज्ञात होती है, तो वह उससे क्षमा-याचना करता है। वासवदत्ता से यह कहकर बात को भुलाना चाहता है कि सागरिका के प्रति उसका प्रेम-व्यवहार केवल मनोरंजन के लिए है। वह वासवदत्ता के प्रति बहुत उदार है। दूसरी प्रेमिका से प्रेम करते हुए भी वह यह नहीं चाहता है कि उसके हृदय को

कोई चोट पहुँचे। वासवदत्ता की स्वीकृति से ही वह अन्त में सागरिका का पाणि-ग्रहण करता है।

उदयन का व्यवहार न केवल उच्च वर्ग के साथ अपितु निम्न वर्ग के साथ भी उदारतापूर्ण है। दासी सुसंगता उसका आदर प्राप्त करती है। उसके निष्कपट व्यवहार से सुसंगता अत्यन्त प्रसन्न है। कोमल भाषा का प्रयोग उदयन की शिष्टता और भावुकता को व्यक्त करता है। इस नाटिका में उदयन भले ही एक विलासी युवक के रूप में चित्रित किया गया है; परन्तु वह अपने कार्यों के प्रति उदासीन या उच्छृंखल नहीं। उसकी अनुमति से ही मंत्री कुछ कर सकने हैं। उसका यह कथन कि मंत्री मुझसे बिना पूछे कैसे कुछ कर सकता है, यह सिद्ध करता है कि उसकी इच्छा के बिना कोई मंत्री स्वतंत्र रूप से कोई कार्य नहीं कर सकता।

भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के नायक उदयन की और हर्ष की 'रत्नावली' के उदयन की यदि तुलना की जाए तो ज्ञात होता है कि भास का उदयन अधिक गम्भीर है। भास ने उसके उदात्त गुणों का भी चित्रण किया है। 'रत्नावली' में उदयन एक प्रेमी के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

रत्नावली :

यह सिंघल के राजा विक्रमबाहु की पुत्री है। यह नाटिका की नायिका है। इसके नाम पर ही इस नाटिका का नाम रखा गया है। पूरे नाटक में इसे सागरिका नाम से संबोधित किया गया है। चूंकि वह समुद्र से प्राप्त हुई थी, इसलिए इसे सागरिका नाम दिया गया है। यह अत्यन्त सुन्दरी है। उदयन ने इसका वर्णन करते हुए कहा है कि इसके निर्माण से ब्रह्मा भी प्रसन्न हो गये होंगे।

रत्नावली विविध कलाओं में विशेषकर चित्रकला में प्रवीण रमणी है। चित्र-कला के द्वारा वह अपना मनोविनोद कर लेती है। वह अत्यन्त भावुक है। प्रथम दर्शन में ही वह अपने आपको राजा पर न्योछावर कर देती है। दासी होते हुए भी एक राजा पर अनुरक्ति उसकी सहज भावुकता का प्रतीक है।

सागरिका रूप-सौन्दर्ययुक्त रमणी ही नहीं, अपितु उसमें साम्राज्ञी होने के सामुद्रिक लक्षण भी विद्यमान हैं। उसके रूप-सौन्दर्य से वासवदत्ता को भी ईर्ष्या है कि कहीं राजा उसकी ओर विचलित न हो जाए। अतः वह ऐसे प्रयत्न करती है कि सागरिका राजा की दृष्टि में न पड़े।

रत्नावली अत्यन्त सुशील, लज्जाशील और सखीजनों पर वत्सल रमणी है। वह प्रेम और सौम्यता की मूर्ति है। उसके अलौकिक सौन्दर्य के साथ उदार गुणों का समन्वय मणि-कांचन-संयोग है। वह न केवल उदयन की सहानुभूति प्राप्त करती है, अपितु सबके लिए प्रेम पात्र है।

'रत्नावली' में उसे अत्यन्त भावुक और कोमल हृदय चित्रित किया गया है।

उसकी भावुकता इतनी सघन और प्रबल है कि जब भी वह अपने प्रेम में कोई विघ्न उपस्थित होते देखती है तो उद्विग्न हो उठती है और अपने प्राण त्यागने की बात सोचने लगती है।

उसे अपने कुल का बहुत अभिमान है। वह जान-बूझकर किसी को भी अपने कुल का विवरण नहीं बताती। क्योंकि वह राजकुमारी होते हुए एक दासी का जीवन बिताने को अभिशप्त है। ऐसे समय में अपने कुल का परिचय देना पितृकुल के लिए अपमानजनक होता है। वह चुपचाप सभी कष्टों को सहन करती जाती है। उच्च कुलीना होने के कारण आत्म-सम्मान की रक्षा करती है। अपमानित जीवन से वह मर जाना अच्छा समझती है। इस नाटिका में रत्नावली को एक मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित किया गया है।

वासवदत्ता :

वासवदत्ता महाराज उदयन की राज-महिषी है। राजा उसके गुणों पर मुग्ध है और उसका अत्यन्त सम्मान करता है, साथ ही उसके असाधारण स्नेह से आश्वस्त है। उसका अपने पति के प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि वह सदा उसी के प्रेम में ध्यान-मग्न रहना चाहती है। उसने राजा के हृदय को जीत लिया है। राजा मन-ही-मन उससे आतंकित रहता है; क्योंकि सागरिका के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करने में डरता है। सागरिका के प्रति प्रेम प्रकट हो जाने पर वह वासवदत्ता के पैरों पर गिरकर क्षमायाचना करता है। जैसा कि स्वाभाविक ही है, वासवदत्ता उदयन पर एकाधिकार चाहती है। वह अपने प्रेम में किसी अन्य का हस्तक्षेप नहीं चाहती। उसमें सपत्नी के तुल्य ईर्ष्या की भावना है। वह उदयन को सागरिका से प्रेम करते हुए नहीं देख सकती। अत: राजा के प्रेम-व्यवहार से अप्रसन्न होकर सागरिका को बन्दी बनाती है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि सागरिका उसकी बहन रत्नावली है, तब उसे अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप होता है। वह सागरिका को अलंकृत करके राजा को समर्पित करती है। इस प्रकार अन्त में उसका भगिनी-प्रेम उसके चरित्र को निखारता है। साथ ही, वह उदार भी है। अपने प्रियतम और पति महाराज उदयन को रत्नावली से प्रेम करते देखकर वही दुःखी भी होती है।

विदूषक :

इस नाटिका में विदूषक का नाम वसन्तक है। वह हास्य के कार्य करता है। वह राजा के प्रणय-वृत्त में सहयोगी है। वह सुसंगता से मिलकर वेश-परिवर्तन

कराकर सागरिका और उदयन को मिलाने का प्रयत्न करता है। दासियों को नाचते देखकर वह नाचने लगता है और उनसे संगीत सीखने का आग्रह करता है। राजा के प्रति उसका वास्तविक प्रेम है। वह उससे आत्मीयता अनुभव करता है। राजा के बिना वह अपना जीवन धारण नहीं कर सकता है। राजा के प्रेम-प्रसंगों में वह सदा सहायक होता है।

श्रीहर्ष का समग्र व्यक्तित्व

भारतीय इतिहास में श्रीहर्ष की गणना महान् शासकों में की जाती थी। वह चक्रवर्ती सम्राट् था। प्रजापालक होने के साथ-साथ विविध विद्याओं और कलाओं का प्रेमी तथा विद्वानों और कला-मर्मज्ञों का आश्रयदाता था। वह स्वयं उच्चकोटि का लेखक था। उसकी गणना संस्कृत-साहित्य में एक महान् नाटककार के रूप में की जाती है। वह स्वयं विद्यानुरागी था और स्वयं विद्वानों का सम्मान करता था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में (उ०2) आलंकारिक भाषा द्वारा उसके गुणों को प्रकट करते हुए लिखा है कि—

'हर्ष निर्मल चित्त वाले सज्जनों को ही रत्न समझता है, पत्थर के टुकड़ों को रत्न नहीं। मोती के समान उज्ज्वल गुणों को वह प्रसाधन समझता है, आभूषण के भार को नहीं। श्रद्धा से ऐसे कर्म करता है, जिनमें दान हो, बल्कि दान जल बहाने-वाले कीट-रूप हाथियों का संग्रह नहीं करता। सबसे बढ़कर, वह सबमें प्रीति रखता है, सूखे तृणों के समान प्राणों में नहीं। जिनसे वह कर ग्रहण करता है, ऐसी दिशाओं में प्रसाधन (दण्ड) का अभियोग करता है, अपनी कलत्र रूप धर्मपुत्त-लिकाओं का प्रसाधन(शृंगार)नहीं करता। वह गुण (डोरी) वाले धनुष को अपना सहायक मानता है, पेट पर पलनेवाले सेवकों पर आश्रित नहीं रहता। वह स्वभावतः स्वयं को अपने मित्रों के उपकार का उपकरण मात्र मानता है, वैदग्ध्य को वह विद्वानों का उपकरण मानता है। अपने धन-वैभव को बन्धु-बान्धवों का उपकरण मानता है। अपने ऐश्वर्य को दीनजनों का उपकरण मानता है। अपने सर्वस्व को ब्राह्मणों का उपकारक मानता है, अपने हृदय को पुण्य के स्मरण का उपकरण मानता है। उसकी आयु धर्म का उपकरण है। उसका शरीर साहस का उपकरण है, पृथ्वी खड्गलता का उपकरण है, राजसमूह उसके विनोद का उपकरण है और शत्रु उसके प्रताप के उपकरण हैं।'

बाण ने 'हर्षचरित' में आगे लिखा है कि काव्यगोष्ठियों में हर्ष स्वयं से उद्भूत काव्य की अमृत वर्षा करते थे।

इससे स्पष्ट है कि उसकी वीरों की गोष्ठियों के साथ ही काव्य-गोष्ठियों में

भी समान रूप से रुचि थी। वीर गोष्ठियों में ऐसा प्रतीत होता था कि रणश्री द्वारा भेजे गये अनुराग संदेश को सुनकर उसके कपोल रोमांचित हो गये हों। पुराने योद्धाओं की विजय-गाथा सुनते समय वह स्नेह से अपनी कृपाण पर दृष्टिपात करता था। (हर्ष० उ० 2)।

सम्राट् हर्ष को जिस प्रकार कृपाण प्रिय थी, उसी प्रकार वीणा से भी उसे प्रेम था। 'वे वीणादण्ड को निरन्तर हाथ में लिये रहते थे।' (हर्ष० उ० 2)।

बाण ने 'हर्षचरित' में हर्ष के विषय में और भी लिखा है कि 'हर्ष सतयुग के कारण के तुल्य थे। विद्वानों की सृष्टि के बीज रूप थे। सरस्वती की समस्त विद्याओं तथा संगीत आदि के भवन तुल्य थे,…धर्म के प्रवर्तन और कलाओं के कुमारी अन्तःपुर और सौभाग्य के प्रमाण थे।'

'हर्षचरित' के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर्ष साधुचरित पुरुषों को रत्न मानता था, गुणों को अलंकार समझता था, श्रद्धा के साथ दान देता था, ब्राह्मणों और पंडितों को सर्वस्व देता था और सरस्वती की समस्त विद्याओं का आश्रयदाता था।

हर्ष स्वयं एक लेखक था। उसने प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द नाटक का प्रणयन किया। हर्ष को अन्य दो बौद्धस्तोत्र ग्रन्थ—**'सुप्रभातस्तोत्र'** और **'अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र'** का भी लेखक कहा गया है।

यद्यपि कुछ विद्वान् तीनों नाटकों को हर्ष की कृति नहीं मानते हैं; तथापि इस बात के प्रर्याप्त प्रमाण और साक्ष्य मिलते हैं, जिनके आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि तीनों नाटकों का प्रणेता हर्ष ही है। मम्मट की उक्ति का अनर्थ कर तीनों नाटकों का प्रणेता किसी अन्य व्यक्ति को कहना नितान्त असंगत है। श्रीहर्ष के नाटकों की प्रशंसा मध्ययुग के साहित्यशास्त्रियों ने भी की है।

जयदेव ने प्रसन्नराघव में उसे भास, कालिदास, बाण और मयूर के समकक्ष रखकर कविताकामिनी का साक्षात् हर्ष कहा है—

'हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः' **प्रसन्नराघव।**

हर्ष न केवल विद्वान् था, अपितु विद्वानों का आश्रयदाता भी था। वह विद्वज्जनों का अपनी सभा में सम्मान किया करता था और उन्हें प्रचुर धन प्रदान करता था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि ज्ञानवान् भिक्षुओं को वह राजदरबार में आसन देता था और उनसे धर्म पर चर्चा सुनता था। वह विभिन्न शास्त्रों एवं विद्याओं का अन्वेषक था। हर्ष ने राजकीय भूमि चार भागों में बाँट रखी थी, जिसमें से एक भाग पण्डितों और विद्वानों को पुरस्कार के रूप में देने के लिए था।

राजा हर्ष को प्रतिनिधि-काव्यों का संग्रह कराने की भी रुचि थी। ईत्सिग के अनुसार श्रीहर्ष ने सुदर कविताओं का एक संग्रह संकलित करवाया था, जिसमें जातकमाला से पाँच सौ श्लोक लिये गये थे। यह संग्रह राजा हर्ष की काव्य-

रसिकता और विद्यानुराग का प्रमाण है।

राजा हर्ष के दरबार की शोभा बढ़ानेवाले तीन उच्चकोटि के साहित्यिकों और कवियों का नाम प्राप्त होता है। 'सुभाषितरत्न-भाण्डागार' के निम्नलिखित श्लोक में उसके आश्रित कवि बाण, दिवाकर और मयूर थे।

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

—'अर्थात् सरस्वती के प्रभाव से नीच जाति का मातंग दिवाकर भी बाण और मयूर के समान ही श्रीहर्ष की सभा का सदस्य हुआ।'

बाण श्रीहर्ष के दरबार में मुख्य कवि थे। इनकी दो रचनाएँ प्रमुख हैं—कादम्बरी और हर्षचरित। 'हर्षचरित' में श्रीहर्ष का जीवन-चरित है। यह ग्रन्थ अधूरा है। इससे हर्ष के विषय में प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है। कादम्बरी उपन्यास है। यह भी अधूरा ही है। इसका शेष भाग बाण के सुयोग्यपुत्र भूषणभट्ट ने पूरा किया। इसके अतिरिक्त 'देशीशतक' या 'चण्डीशतक' भी बाण-प्रणीत बताया जाता है।

मयूर श्रीहर्ष का दूसरा आश्रित कवि था। इसकी दो रचनाएँ बतायी जाती हैं—'सूर्यशतक' या 'मयूरशतक' और 'आर्यमुक्तमाल'। तीसरे कवि मातंग दिवाकर के विषय में कोई विवरण नहीं प्राप्त होता है। डॉ. कीथ के अनुसार इसके कुछ श्लोक संस्कृत-साहित्य में प्राप्य हैं।

ग्यारहवीं शती के कवि सोड्ढल ने अपने ग्रन्थ 'उदयसुन्दरी कथा' में श्रीहर्ष को महाकवि और महादानी बताया है। उसका कथन है कि श्रीहर्ष विक्रमादित्य, मुंज और भोज आदि राजाओं के समान कवीन्द्र थे, काव्यमर्मज्ञ थे। अतः उन्हें गीर्हर्ष अर्थात् वाणी का आनन्द कहा गया है। साथ ही लिखा है कि बाण को एक सौ करोड़ स्वर्ण मुद्रा से पुरस्कृत किया था—

गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा
सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः॥

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष न केवल सम्राट् ही था, अपितु एक महान् साहित्यानुरागी, विद्वानों का आदरकर्त्ता और कलाकार भी था। उसकी विद्या में रुचि थी। वह विद्वानों का सत्कार करता था और अपने समय के प्रमुख विद्वानों को अपने राजदरबार में स्थान भी देता था। वह राजा भोज की तरह उदार दानी भी था।

श्रीहर्ष विद्या का परम अनुरागी था। स्वयं कवि होने के नाते वह विद्वानों का आश्रयदाता था और समुचित सत्कार करता था। अतः हर्ष के समय शिक्षा की उन्नति और प्रसार हुआ। ह्वेनसांग ने शिक्षा की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि राजा हर्ष विद्या और प्रतिभा का बहुत आदर करता था। अतः जन-

साधारण में विद्वानों का बहुत.मान और आदर था। अधिकारी वर्ग भी विद्वानों का सम्मान करते थे। विद्या की इस प्रतिष्ठा के कारण लोगों में विद्यार्जन करने की प्रवृत्ति तब बहुत बढ़ गयी थी। फलत: शास्त्र और विज्ञान के जिज्ञासु व्यक्ति थकान और श्रम की चिन्ता न कर विद्या की खोज में प्रवृत्त होकर सैकड़ों मील की यात्रा करते शिक्षा-केन्द्रों में पहुँचा करते थे। यह हर्ष की विद्या, शिक्षा और कला के प्रति अभिरुचि और प्रश्रय का परिणाम था कि शिक्षा का यथेष्ट प्रचार एवं प्रसार हुआ और शिक्षा का स्तर भी उन्नति की ओर था।

ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि बच्चों के सात वर्ष का हो जाने पर 'सिद्धम् चंग' पुस्तक से उनकी शिक्षा प्रारम्भ की जाती थी। इस पुस्तक में वर्ण-परिचय दिया गया था। बौद्ध धर्मानुयायियों की आरम्भिक पुस्तक सिद्धम् कहलाती थी और ब्राह्मणों की प्रारम्भिक पुस्तक 'सिद्धिरस्तु' कहलाती थी। ईत्सिंग के अनुसार बालक को छ: वर्ष की आयु से ही सिद्धम् पुस्तक पढ़ाई जाती थी। सिद्धम् के बाद पंच-शास्त्रों का ज्ञान काराया जाता था। ये पाँच विद्याएँ थीं—

1. व्याकरण या शब्द-विद्या,
2. शिल्प-स्थान-विद्या,
3. चिकित्सा-विद्या,
4. हेतुविद्या,
5. अध्यात्म-विद्या।

बौद्ध धर्म के आचार्य एवं पण्डित के लिए आवश्यक था कि वह इन पाँचों विद्याओं में पारंगत हो। ह्वेनसांग ने लिखा है कि ब्राह्मणों को चारों वेदों का अध्ययन कराया जाता था। आचार्य चारों वेदों में पारंगत होते थे। उसके अनुसार आचार्य संसार के कोलाहल से दूर, एकान्त में तपस्वी-जीवन व्यतीत करते थे। सांसारिक सुख-लाभ तथा मान-अपमान का उन्हें विचार नहीं रहता था। उनकी ख्याति लोकव्यापी होती थी।

बाण ने 'हर्ष-चरित' में लिखा है कि आचार्यों के घर विद्या-अर्जन के केन्द्र थे। बाल्यकाल में बाण ने स्वयं अपने आचार्य के घर पर ही विद्याध्ययन किया था और चौदह वर्ष की आयु में स्नातक होकर वह घर लौटा था। पिता की मृत्यु के बाद वह इधर-उधर भटक गया था। पुन: उसने गुरुकुलों में विद्याध्ययन किया और अपने कुल के अनुरूप विद्वान् बन गया। (हर्ष-चरित, उ० 1)

हर्ष-चरित से ज्ञात होता है कि हर्ष के समय बड़े नगर, विद्या के केन्द्र, गुरुकुलों तथा कलाओं व शिल्पों आदि के केन्द्र के रूप में विख्यात थे। स्थानेश्वर शिक्षा और शिल्प तथा कला का केन्द्र था। इसका वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है— लासकों अथवा नर्तकों के लिए वह नगर संगीतशाला था। विद्या के अर्थियों के लिए वह नगर गुरुकुल था, गायकों के लिए गन्धर्व नगर था और वैज्ञानिकों के

लिए विश्वकर्मा का मन्दिर था।(हर्ष०, उ० 3)हर्ष के समय वाराणसी, स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) कन्नौज आदि नगर शिक्षा और शास्त्रों के प्रमुख केन्द्र थे।

नालन्दा-विहार—हर्ष के समय नालन्दा शिक्षा और विद्या का सर्वोच्च केन्द्र था। लाइफ ने लिखा है कि उस समय संघाराम सैकड़ों की संख्या में थे, लेकिन सबसे भव्य और विशाल नालन्दा का विहार था। नालन्दा-विहार को हर्ष का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। नालन्दा-विहार के भरण-पोषण के लिए उसने सौ गाँव दे रखे थे। इन गाँवों से दो सौ गृहस्थ प्रतिदिन भोजनादि विहार पहुँचाया करते थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालन्दा-विहार में दस हज़ार विद्यानुरागी साधक भिक्षु रहते थे। धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में अपनी शंकाओं को दूर करने के लिए सुदूर देशों से लोग यहाँ आकर रहते थे। आचार्यों की कुल सख्या १५१० थी। विहार के प्रमुख आचार्य शीलभद्र थे। महायान बौद्ध धर्म के साथ अन्य अठारह दर्शनों, ब्राह्मण धर्म के चारों वेदों, तथा हेतु-विद्या, शब्द-विद्या, चिकित्सा-विद्या, सांख्यदर्शन तथा तंत्र-विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी।

नालन्दा-विहार में प्रवेश के समय परीक्षा ली जाती थी। परीक्षा बहुत कड़ी होती थी। ह्वेनसांग लिखता है कि नालन्दा-विहार उच्च शिक्षा का केन्द्र था। अतः ज्ञान की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध होने वाले शिक्षार्थी का ही उसमें प्रवेश हो पाता था।

नालन्दा सातवीं शताब्दी का एशिया का एकमात्र शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। हर्ष के संरक्षण के कारण यह उन्नति को प्राप्त हुआ।

इस पुस्तिका का समापन श्रीहर्ष-विषयक प्रशस्तियों से करना अधिक उपयुक्त जानकर 'प्रसन्नराघव' के रचयिता महाकवि जयदेव की संस्तुति सर्वप्रथम उद्धृत की जा रही है। इसमें श्रीहर्ष को कविता-कामिनी का हर्ष बताया गया है—

> यस्यांश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः।
> भासो हासः कविकुलगुरुःकालिदासो विलासः॥
> हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।
> केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥ प्रसन्नराघव 1.22

ग्यारहवीं शती के कवि सोड्ढल ने अपनी 'उदयसुन्दरी कथा' में श्रीहर्ष को विक्रमादित्य, मुंज और भोज आदि राजाओं के समान कवीन्द्र कहा है, जिसने बाण को एक सौ करोड़ स्वर्ण-मुद्रा से सम्पूजित किया था।

> श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु
> नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
> गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा
> सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः॥

सुभाषित-रत्नभाण्डागार में श्रीहर्ष का नाम मयूर, कालिदास, भवभूति, बाण

और दण्डी आदि के साथ कवियों में गिना है—

माघश्चौरो मयूरो मुरानिपुणो भारविः सारविद्यः,
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्याह्वयो भोजराजः ।
श्रीदण्डी डिण्डमाख्यः श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लटो भट्टबाणः
ख्याताश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति ॥

हर्ष की काव्य-चातुरी की प्रशंसा करते हुए बाण ने लिखा है—

काव्यकथास्वपीतामृतमुद्वहन्तम् विमलकपोलप्रतिबिम्बितां ।
चामरग्राहिणी विग्रहिणीमिव मुखवासिनीं सरस्वतीमावधानम् ॥

(हर्ष-चरित)

एक समीक्षक ने हर्ष के गुणों की गणना करते हुए लिखा है—

आश्लिष्टसन्धिबन्धं सत्पात्रसुवर्णयोजितं सुतराम् ।
निपुणपरीक्षकदृष्टं राजति रत्नावली-रत्नम् ॥

सन्दर्भ-ग्रन्थ :

रत्नावली नाटिका—तारिणीश झा, इलाहाबाद, 1969
नागानन्द नाटक—डॉ. संसारचन्द्र, 1970
प्रियदर्शिका—रामचन्द्र मिश्र, 1976
संस्कृत नाटक—डॉ. ए. बी. कीथ (अनु० उदयभान सिंह) 1971
संस्कृत नाटक समीक्षा—इन्द्रपाल सिंह, 1960
संस्कृत नाट्य साहित्य—खण्डेलवाल, 1969
संस्कृत नाटककार—डॉ. कान्तिकिशोर भरतिया 1959
संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ. कीथ (अनु० डॉ. मंगलदेव शास्त्री) 1960
संस्कृत साहित्य का इतिहास—आचार्य बलदेव उपाध्याय, 1968
संस्कृत साहित्य का इतिहास—वरदाचार्य (अनु० डॉ. कपिलदेव द्विवेदी) 1962
संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास—डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, 1982
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ. बाबूराम त्रिपाठी 1973
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय, 1966
संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ—खण्डेलवाल, 1969
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—चन्द्रशेखर पाण्डेय, व्यास, 1967
संस्कृत कवि दर्शन—डॉ. भोलाशंकर व्यास, 1968
संस्कृत काव्यकार—डॉ. हरिदत्त शास्त्री, 1962
संस्कृत के महाकवि और काव्य—डॉ. रामजी उपाध्याय, 1965
मौखरी राजवंश और पुष्यभूति—प्रो. भगवती प्रसाद पांथरी, 1973
उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास—डॉ. विशुद्धानन्द पाठक, 1973
हर्षचरित—चौखम्बा, 1972
दशरूपक—डॉ. भोलाशंकर व्यास, 1967
हर्षवर्धन—डॉ. गौरीशंकर चटर्जी
हर्ष—डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी
भारतीय इतिहास की भूमिका—डॉ. राजबली पाण्डेय